अन्तर्राष्ट्रीय क्रियायोग वैज्ञानिक परम पूज्य
गुरुदेव स्वामी श्री योगी सत्यम् जी

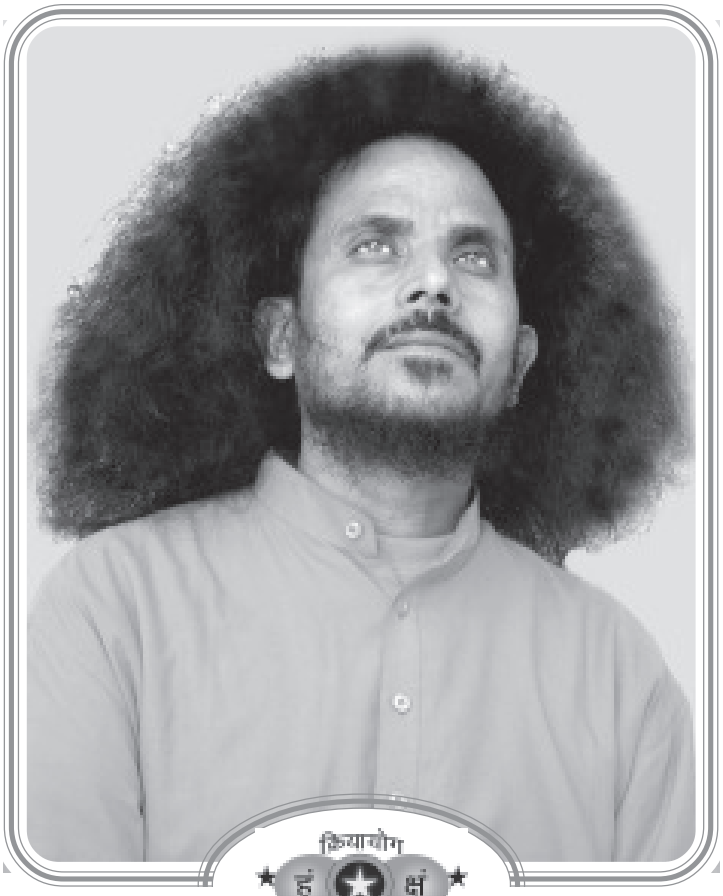

क्रियायोग विज्ञान

I

क्रियायोग विज्ञान

मानव विकास का मूलमंत्र

10 मिनट का अभ्यास - 20 वर्ष का विकास

प्रथम केन्द्र

क्रियायोग अनुसंधान संस्थान

झूँसी, इलाहाबाद (उ0प्र0) भारत

सम्पर्क सूत्र भारतः +91-9415217277 से 81 तक

एवं +91-9415235084

KriyayogaAllahabad@hotmail.com

द्वितीय केन्द्र

योग फैलोशिप टेम्पल

388 प्लेन्स रोड, किचनर आन्टेरियो N2 R1 R8 कनॉडा ।

सम्पर्क सूत्र कनॉडा - 001-519-696-3869

kriyayoga.canada@yahoo.ca

वेबसाइट- www.kriyayoga-yogisatyam.org

ई मेल- yogisatyam@hotmail.com

परब्रह्म की अलौकिक

अभिव्यक्ति है-

‘‘क्रियायोग ध्यान’’

विषय-अनुक्रमणिका

क्रियायोग विज्ञान - संक्षिप्त परिचय

1. क्रियायोग सुप्राचीनतम एवं नवीनतम आध्यात्मिक विज्ञान 10

2. क्रियायोग अव्यय व सनातन स्वरूप 11

3. क्रियायोग क्या है ? 15

4. योग का वास्तविक स्वरूप 22

5. अष्टाँग योग - योग के आठ पर्याय 24

6. क्रियायोग शरीर व मन के बीच दूरी शून्य करने का विज्ञान 33

7. क्रियायोग की शाब्दिक एवं तात्विक विवेचना 35

8. क्रियायोग गीता में वर्णित अग्निहोत्र, 'स्वाहा'- स्व में लीन होने पर प्राप्त अनन्त आनन्द का प्रतीक 38

9. क्रियायोग प्राचीन काल में वर्णित यज्ञ 41

10. श्वाँस का व्यायाम प्राणायाम नहीं है, क्रियायोग से प्राणायाम अवस्था की प्राप्ति 44

11. क्रियायोग से आसन अवस्था की प्राप्ति 48

12. क्रियायोग प्राण व अपान वायु का हवन.....50

13. क्रियायोग सत्य व अहिंसा पर चलने की क्रिया 53

14. सत्य की अनुभूति के लिए योगस्थ अवस्था की अनिवार्यता.....55

15. सम्पूर्ण बीमारियों का मूल कारण आदतों की गुलामी 57

क्रियायोग से शास्त्रों में निहित सत्य का ज्ञान

1. श्रीमद्भगवदगीता के प्रथम अध्याय के 15 वें श्लोक की सद्व्याख्या 63

2. क्रियायोग से अन्तःकरण में बाइबिल के ज्ञान का अवतरण 67

3. क्रियायोग की दृष्टि में रामचरितमानस 71

क्रियायोग द्वारा मृत्यु पर विजय (अद्भुत महासमाधियाँ)
Last Supper - Glorious Departure

1. मृत्यु अस्तित्व का समापन नहीं बल्कि अनन्त में विलय की दिव्य घटना 79

2. अद्‌भुत महासमाधियाँ (Last Supper) 81

3. श्री परमहंस योगानन्द जी 83

4. योगावतार श्री श्यामाचरण लाहिड़ी जी 86

5. ज्ञानावतार स्वामी श्री युक्तेश्वर गिरी जी 89

6. द्विशरीर संत स्वामी प्रणवानन्द जी 91

7. ईसा मसीह 94

8. Spiritual Interpretation of Bible in the Light of Kriyayoga 99

वर्तमान युग आरोही द्वापर का 310 वाँ वर्ष

1. वर्तमान युग आरोही द्वापर का 310 वाँ वर्ष 103

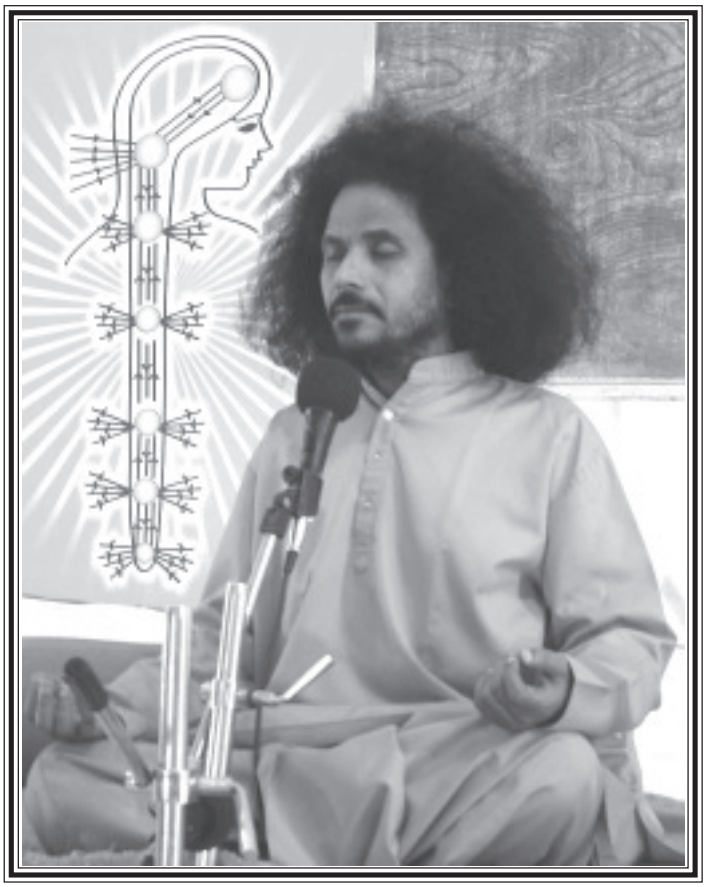

परम पूज्य गुरुदेव स्वामी श्री योगी सत्यम् जी

के द्वारा क्रियायोग प्रशिक्षण एवं अभ्यास शिविर

मे दिये गये व्याख्यानों का संक्षिप्त संकलन

मनुष्य का वर्तमान स्वरूप अतीत का पुनरुत्थान और
भविष्य का गर्भ है । क्रियायोग साधना के द्वारा स्वरूप में
एकाग्रता बढ़ाकर अल्पकाल में सम्पूर्ण ब्रह्माण्डीय रहस्यों
को आविष्कृत किया जा सकता है ।
क्रियायोग की साधना से अतीत, वर्तमान और भविष्य के
बीच दूरी की शून्यता का अनुभव हो जाता है । ऐसी
अवस्था में अपने सनातन, अमर, सर्वव्यापी स्वरुप
का ज्ञान प्राप्त होता है । इस अवस्था की प्राप्ति होने पर
सम्पूर्ण दैहिक, दैविक और भौतिक
कष्टों का समापन हो जाता है ।

पूज्य गुरुदेव स्वामी श्री योगी सत्यम् जी
के द्वारा क्रियायोग कार्यक्रम में
दिये गये व्याख्यानों का संक्षिप्त संकलन

क्रियायोग विज्ञान

संक्षिप्त परिचय

10

क्रियायोग सुप्राचीनतम एवं नवीनतम आध्यात्मिक विज्ञान

क्रियायोग एक सुप्राचीनतम एवं नवीनतम आध्यात्मिक विज्ञान है जो काल के प्रभाव से विलुप्त हो गया था । वर्तमान आरोही द्वापर युग में इसे योगिराज श्री श्री श्यामाचरण लाहिड़ी महाशय जी ने अपने परम गुरू श्री श्री महावतार बाबा जी से प्राप्त किया । श्री श्री महावतार बाबा जी ने अपने जन्म-जन्मान्तर के परम शिष्य श्री श्री लाहिड़ी महाशय जी को 1861 ई0 में हिमालय अंचल में स्थित रानी खेत के द्रोणगिरी पर्वत पर क्रियायोग की दीक्षा देते हुए कलिकाल के गहन अज्ञानमय अँधकार में लुप्त क्रियायोग को पुनरुज्जीवित किया । अमर गुरू श्री श्री महावतार बाबा जी ने कहा था कि क्रियायोग वही सनातन विज्ञान है जिसे योगेश्वर श्री कृष्ण ने प्राचीन ज्ञानी सूर्य को दिया था । सूर्य से यह ज्ञान मनु तथा मनु से इच्छवाकु को प्राप्त हुआ । इच्छवाकु से यह ज्ञान राजर्षियों को प्राप्त हुआ तत्पश्चात् काल के प्रभाव से यह ज्ञान लुप्त हो गया ।

इस प्रकार श्री श्री महावतार बाबा जी के कृतित्व तथा श्री श्री लाहिड़ी महाशय जी की तपस्या से क्रियायोग की अमर गंगा पुनः प्रवाहित होने लगी तथा अनेक साधक व शिष्यगण इस पवित्र मंदाकिनी में स्नान करके उच्च आध्यात्मिक अवस्था को प्राप्त किये । ✪

क्रियायोग अव्यय - सनातन स्वरूप

क्रियायोग सनातन आध्यात्मिक विज्ञान है जो प्राचीनतम एवं नवीनतम स्वरूप में मनुष्य के कूटस्थ में विद्यमान है । क्रियायोग का स्वरूप अव्यय है । क्रियायोग की पुस्तकें चाहे जल कर राख हो जाय परन्तु क्रियायोग का अस्तित्व कभी भी समाप्त नहीं होगा । अन्तःकरण में परमात्मा को खोजने की गहन प्यास जागृत होने पर मानव मस्तिष्क के अंदर क्रियायोग का ज्ञान स्वतः प्रकाशित हो जाएगा । क्रियायोग की महिमा अनन्त है । दिन-रात, प्रकाश-अंधकार, कलियुग-सतयुग, ज्ञान-अज्ञान के क्रमिक आगमन और गमन से क्रियायोग के शाश्वत् स्वरूप पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है । क्रियायोग समत्व का रूप है जो दिन व रात के परिवर्तन, काल चक्र के परिवर्तन, ज्ञान व अज्ञान के परिवर्तन से प्रभावित नहीं होता है ।

क्रियायोग के अभ्यास से साधक स्वयं को अव्यय, अमर, सनातन अस्तित्व के रूप में पहचान लेता है । ऐसी अवस्था में ब्रह्माण्ड की प्रत्येक रचनाओं के अमर स्वरूप का दर्शन होता है ।

आज कल प्रचलित यज्ञ, तप, नाम जप, उल्टा नाम जप, मंत्र साधना, तंत्र साधना, राज योग, कर्म योग, भक्ति योग, ज्ञान योग, लय योग, गायत्री मंत्र का अभ्यास, उपनयन संस्कार आदि प्रतीकात्मक आध्यात्मिक

आधुनिक युग के योगावतार श्री श्री श्यामाचरण लाहिड़ी महाशय जी ने स्पष्ट किया है-

" क्रियायोग परब्रह्म का स्वरूप है ।
क्रियायोग का अभ्यास ही यज्ञ है, वेदपाठ है ।
यह यज्ञ सभी को करना चाहिए ।
जीवन की समस्त समस्याओं का समाधान
क्रियायोग साधना से प्राप्त करिये । "

योगावतार श्री लाहिड़ी महाशय

अभिव्यक्ति है, इसका वास्तविक स्वरूप क्रियायोग का अभ्यास है । समस्त साधनाओं का मौलिक स्वरूप एक है ।

काल के प्रभाव से मानव मस्तिष्क में ज्ञान का लोप होने पर पूजा पद्धतियों तथा साधनाओं के स्वरूप का अधिकांश भाग प्रतीक के रूप में रह गया है तथा उस प्रतीक के पीछे छिपी वैज्ञानिकता तथा सूक्ष्म साधना का ज्ञान लुप्त हो गया है । पूजाओं और साधनाओं का प्रतीकात्मक स्वरूप गलत नही है परन्तु प्रतीक को सत्य मान लेना गलत है । आज आवश्यकता है कि हम प्रतीक का सम्मान देने के साथ ही साथ उसमें निहित सत्य को भी खोजें ।

क्रियायोग समस्त साधनाओं, पूजाओं में निहित सत्य का साक्षात्कार करने का विज्ञान है। क्रियायोग अभ्यास के द्वारा साधक, साधन व साध्य के बीच दूरी की शून्यता स्थापित होने पर मनुष्य सत्य का दर्शन कर लेता है। ऐसी स्थिति में उसकी द्वैत दृष्टि अद्वैत दृष्टि में रूपान्तरित हो जाती है।

अद्वैत दृष्टि के प्रकट होने पर साधक दो की उपस्थिति का अनुभव नही करता है । उसे अनुभव हो जाता है कि ब्रह्माण्ड की समस्त रचनाओं का मौलिक स्वरूप एक है । एक परमतत्व अनन्त रूपों में ठीक उसी प्रकार प्रकाशित हो रहा है जिस प्रकार एक बीज जड़, तना, पत्तियाँ, पुष्प, फल आदि के रूप में प्रकट होता है । ✪

क्रियायोग ध्यान से अन्तःकरण में पूर्ण शिक्षा का अवतरण

मानव स्वरूप के सिर रीढ़ में स्थित सप्त ज्ञानद्वार

क्रियायोग क्या है ?

1- क्रियायोग मानव के अंदर उन विचारों व भावनाओं का सृजन करता है जिससे मनुष्य चिर स्वास्थ्य व अखण्ड शांति का अनुभव करते हुए अपने अमर अस्तित्व की अनुभूति में निरन्तर बना रहता है । क्रियायोग अभ्यास मनुष्य में छिपी हुई अनन्त शक्ति युक्त जीवनी शक्ति का शाश्वत् दीप प्रज्जवलित कर देता है । इस अवस्था में सुख-दुःख, बीमारी-स्वास्थ्य, जीवन-मृत्यु आदि सब कुछ स्वप्न है, अनुभव होता है ।

2- क्रियायोग ध्यान में शाश्वत् एकता के भाव व विचार प्रकट होते हैं जो मानव मस्तिष्क से जाति भेद, रंग भेद, साम्प्रदायिक-धार्मिक भेद भाव को पूरी तरह मिटा देता है । ऐसी स्थिति में मनुष्य का हृदय, मन व बुद्धि तत्व सभी जीव-जन्तुओं के हृदय, मन व बुद्धि से संयुक्त हो जाता है। इस अवस्था में पहुँचते ही मनुष्य को एकोऽहम्बहुष्यामि सत्य की अनुभूति होती है ।

3- गहरी नींद की परम आवश्यकता उन्हें होती है जो जागृत व स्वप्न की स्थिति में द्वन्दात्मक विचारों के माध्यम से कार्य करते हैं । यह पाप है, वह पुण्य है, यह अपना है, वह पराया है, यह सुख देगा, वह दुःख देगा आदि विचारों से जुड़कर जब आदमी घर व घर के बाहर कार्य करता है,

तब उसे गहरी नींद की बहुत आवश्यकता पड़ती है । सोचिए ऐसा क्यों? गहरी नींद में मनुष्य एकता के शाश्वत् नियम में स्थित होता है । वह अहंकार के माया जाल से मुक्त रहता है । यहाँ अहंकार के माया जाल से तात्पर्य है मुनष्य का अपनी विशेष पहचान बनाना । शरीर की उम्र, शरीर का रूप-रंग, जाति और धर्म, पारिवारिक संबंध- माता-पिता, भाई-बन्धु, पति-पत्नी आदि, साम्प्रदायिक धार्मिक भाव- हिन्दु, मुस्लिम, ईसाई आदि, सामाजिक पद-प्रतिष्ठा, अपमान, लिंग भेद- स्त्री-पुरुष आदि के रूप में अपने को पहचानना, मनुष्य का अहंकार के माया जाल में फँसना है ।

क्रियायोग के अभ्यास से गहरी नींद में अनुभव की गयी समता जागृत अवस्था में प्राप्त हो जाती है । ऐसी अवस्था में जिस सुख शांति की प्राप्ति होती है उसे लिखकर या कहकर व्यक्त नहीं किया जा सकता है । अगर लिखकर या कहकर व्यक्त करना ही पड़े तो पूर्ण समता की स्थिति को अहम्ब्रह्मास्मि की स्थिति कहते हैं । अहम्ब्रह्मास्मि की स्थिति में ही एकोऽहम्बहुष्यामि की अनुभूति होती है ।

शाश्वत् समता की अनुभूति होने पर मनुष्य में हिंसा का मायावी भाव विलुप्त हो जाता है और वह सत्य व अहिंसा के शाश्वत् अमर अस्तित्व में स्थापित है, का बोध हो जाता है । ऐसी स्थिति में सेना, पुलिस, शासन, प्रशासन व न्यायाधीश का रूप बदल जाता है । सभी एक दूसरे को ईश्वर

की उपस्थिति के रूप में स्वागत करते हैं ।

4- क्रियायोग ध्यान से यह स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य के द्वारा किये गए सम्पूर्ण कर्म से प्राप्त अद्वितीय उपलब्धि से मनुष्य का अस्तित्व अनन्त गुना अधिक श्रेष्ठ है । अनादि काल से वेद, शास्त्र के सूत्र, मंत्र, विज्ञान और पराविज्ञान के सारे नियम आदि सब कुछ मानव के अंदर से बाहर की तरफ उसी तरह प्रवाहित होते रहे हैं जैसे हिमालय से पावन गंगा की अविरल धारा।

5- क्रियायोग ध्यान में स्थित हो जाने पर पता चलता है कि अतीत, वर्तमान और भविष्य के बीच दूरी शून्य है । जिसे वर्तमान कहते हैं, वह अतीत का पूर्ण स्वरूप और भविष्य का पूर्ण गर्भ है । क्रियायोग ध्यान से मनुष्य स्वतः बिना प्रयास के अनन्त की यात्रा करने लगता है जिसे प्रचलित भाषा में परमात्मा में भक्ति का विस्तार कहते हैं ।

6- क्रियायोग ध्यान में स्थित हो जाने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि बीमारी, सुख-दुःख, जन्म-मृत्यु आदि स्वप्न है और साथ ही साथ सत्य की स्पष्ट अनुभूति हो जाती है । सत्य क्या है? को स्पष्ट करना वैसे ही अत्यन्त कठिन है जिस प्रकार समुद्र में कितना बूँद पानी है, को गिनना कठिन है । सत्य अनुभूति में स्पष्ट अनुभव होता है कि पूरा दृश्य व अदृश्य जगत एक

परम तत्व का व्यक्त स्वरूप है । उसी परमतत्व को परब्रह्म, सर्वव्यापी परमात्मा कहते हैं । यह स्पष्ट हो जाता है कि परब्रह्म सर्वशक्तिमान व सर्वज्ञ हैं तथा उनके लिए कुछ भी असंभव नहीं है। वह स्वयं 24 तत्वों के रूप में प्रकाशित हैं। वे 24 तत्व इस प्रकार हैं- महततत्व (चित्त या हृदय तत्व), अहंकार तत्व (जीव), बुद्धि, मन, कर्ण ज्ञानेन्द्रिय, त्वक् (त्वचा) ज्ञानेन्द्रिय, नेत्र ज्ञानेन्द्रिय, जिह्वा (स्वाद) ज्ञानेन्द्रिय, नाक (घ्राण) ज्ञानेन्द्रिय, वाक (कण्ठ) कर्मेन्द्रिय, हस्त (हाथ) कर्मेन्द्रिय, पद् (पैर) कर्मेन्द्रिय, प्रजनन कर्मेन्द्रिय, गुदाद्वार (मल निष्कासन) कर्मेन्द्रिय, पँच तन्मात्रा, पँच स्थूल तत्व (आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी) इत्यादि । इसी सत्य की अनुभूति को एकोऽहम्बहुष्यामि के रूप में व्यक्त किया जाता है ।

नोट- इसे समझने के लिए चित्र नम्बर 1, 2 और 3 पर ध्यान दें ।

7- क्रियायोग ध्यान से स्पष्ट हो जाता है कि ब्रह्माण्ड की प्रत्येक रचना में वह सभी तत्व स्थित हैं जिससे आवश्यकतानुसार कुछ भी प्रकट किया जा सकता है । आकाश तत्व से प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वाइटमिन्स, मिनरल्स, वसा, जल, अग्नि, प्रकाश, ठोस, द्रव, गैस, वनस्पति जगत, जन्तु जगत व मानव आदि को आवश्यकतानुसार प्रकट व अदृश्य किया जा सकता है। यही कारण है कि क्रियायोग के अभ्यास में जिसको परम आनन्द की प्राप्ति होती है उसको किसी भी प्रकार के पोषक तत्वों की कमी नहीं होती है ।

चित्र नम्बर 1

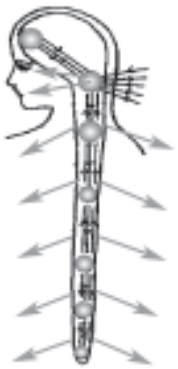

प्राणशक्ति के बहिर्गमन से
अंधा मन क्रियाशील होता है ।

चित्र नम्बर 2

प्राणशक्ति के उर्ध्वगमन से
जागृत बुद्धि क्रियाशील होती है।

क्रियायोग साधना के द्वारा प्राणशक्ति के उर्ध्वमुखी प्रवाह से सीमित शक्ति का असीमता में रूपान्तरण

चित्र नम्बर 3

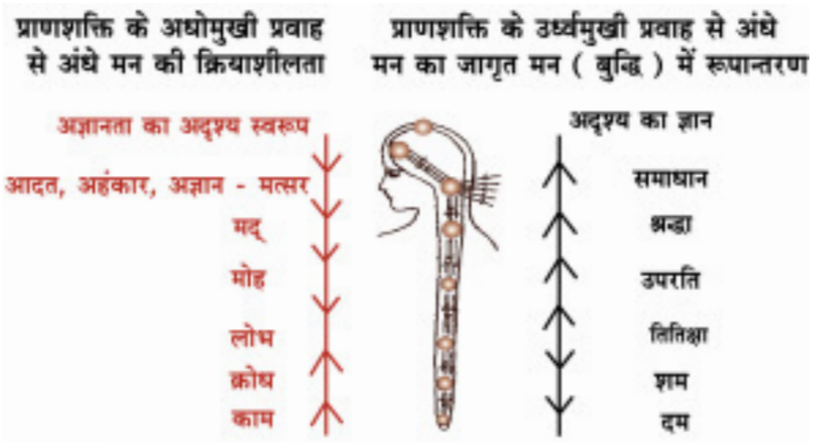

8- क्रियायोग के अभ्यास से स्पष्ट अनुभव होता है कि मानव स्वरूप एक पूर्ण अस्तित्व है । अपने स्वरूप में एकाग्रता बढ़ाने से मनुष्य सम्पूर्ण दृश्य व अदृश्य जगत के साथ पूर्ण एकता की अनुभूति करता है । यहाँ एकता का अभिप्राय है दूरी की शून्यता । ऐसी स्थिति में मनुष्य अपने स्वरूप का रूपान्तरण किसी भी आकार में करने में समर्थ होता है । वह जब चाहे पेड़-पौधे, जीव-जन्तु, मानव आदि स्वरूप में प्रकट हो सकता है। अनेक आत्मज्ञानी ऋषि-मुनि इसी तरह से प्रकट होते रहते हैं ।

क्रियायोग के अभ्यास में अपनी रुचि बढ़ाते जाइए और इतना अभ्यास करिए कि क्रियायोग का अभ्यास आनन्द की अनुभूति बन जाय फिर जिस चीज की जहाँ आवश्यकता होगी वह चीज वहीं प्रकट हो जाएगी । पूरा विश्वास रखिए कि अगर पैसे की आवश्यकता पड़ी तो परब्रह्म पैसे के रूप में भी प्रकट हो जाएँगे ।

9- क्रियायोग ध्यान ईश्वरानुभूति की वैज्ञानिक प्रणाली है । इसका सभी देशों में प्रसार निरन्तर बढ़ेगा । इससे मनुष्य अपने अंदर सर्वव्यापी कूटस्थ में स्थापित होकर सभी मनुष्य के हृदय क्षेत्र से जुड़ जाता है और आवश्यकतानुसार सभी की सेवा करने में पूर्ण सफल हो जाता है । ऐसे ही सफल व्यक्ति देश के न्यायाधीष, शासक व प्रशासक होंगे जिनके अंदर दिव्य माँ का ममत्व होगा ।

10- क्रियायोग ध्यान में अतीत, वर्तमान और भविष्य के वे समस्त स्वरूप अनुभव होते हैं जिससे मनुष्य को अपने सर्वव्यापी अस्तित्व का ज्ञान हो जाता है । इसी अवस्था को ईसा मसीह ने जब अनुभव किया तो उन्होंने कहा कि हमारे व परमात्मा के बीच दूरी शून्य है, योगेश्वर श्री कृष्ण ने कहा कि सब मुझमें हैं और मैं सबमें हूँ । भगवान श्री राम ने कहा कि सभी रूपों में मुझे ही देखो । आधुनिक युग के योगावतार श्री श्यामाचरण लाहिड़ी ने कहा कि मैं ही किशुन हूँ, मैं ही ब्रह्म हूँ । ज्ञानावतार परमहंस श्री युक्तेश्वर गिरी जी ने स्पष्ट घोषणा किया कि पूरा ब्रह्माण्ड परब्रह्म का व्यक्त रूप है । प्रेमावतार श्री परमहंस योगानन्द जी ने कहा है कि मैं ही सर्वव्यापी ज्ञान तत्व हूँ । हमारे व परमात्मा के बीच वही संबंध है जो लहर व समुद्र के बीच है । क्रियायोग को इतना सीखिए कि 24 घण्टा जागृत, स्वप्न और गहरी नींद की स्थिति में क्रियायोग के चैतन्यपूर्ण अभ्यास में प्रतिपल रह सकें ।

11- क्रियायोग ध्यान में स्थित होने पर अन्तःकरण में शास्त्रों की वास्तविक व्याख्या प्रकट होती है । उदाहरणार्थ- **अष्टाँग योग की संक्षिप्त क्रियायोगिक व्याख्या स्पष्ट किया जा रहा है ।** ✪

22

योग का वास्तविक स्वरूप

योग का अभ्यास नहीं किया जा सकता है ।
योग मानव के विकास की उच्चतम अवस्था है
जिसमें मनुष्य दूरी (कठिनाई) तथा समय (काल)
की अनुभूति के परे होता है ।
योग अवस्था की प्राप्ति के लिए जिस साधना
(क्रिया) का अभ्यास करना पड़ता है,
उसे क्रियायोग कहा गया है ।

योग अवस्था के प्रकट होने पर साधक अपने तथा आदि, मध्य, अंत के बीच दूरी की शून्यता का अनुभव कर लेता है । ऐसी अवस्था में काल का विभाजन समाप्त हो जाता है । समय को भूत, भविष्य और वर्तमान में बाँटना, अज्ञानता का प्रतीक है । वास्तव में समय अविभाजित है तथा इसी प्रकार ब्रह्माण्ड की समस्त रचनाएँ भी अविभाजित हैं ।

क्रियायोग साधना के द्वारा योग अवस्था के प्रकट होने पर आदि, मध्य, अंत एक विन्दु पर दिखायी देता हैं जिससे आदि, मध्य व अंत तीनों अलग-अलग न होकर, एक में रूपान्तरित हो जाते हैं । इसी को वर्तमान में रहना कहा गया है । वर्तमान में रहने का अभिप्राय भूत व भविष्य को

विस्मृत करना नहीं बल्कि भूत, भविष्य के सम्पूर्ण रहस्यों का ज्ञान प्राप्त कर लेना है जिससे भूत व भविष्य का स्वरूप वर्तमान में रूपान्तरित हो जाय। योग अवस्था को ही अविभाज्य अवस्था, अखण्डित अवस्था, युक्तावस्था, योगस्थ अवस्था आदि अनेक रूपों में वर्णित किया गया है ।

योग अवस्था के प्रकट होने पर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड अविभाजित है, किसी भी रचना का विभाजन संभव नहीं है, इसका स्पष्ट ज्ञान हो जाता है । यह अनुभव हो जाता है कि सारी रचनाएँ एक दूसरे से शाश्वत् रूप में जुड़ी हैं, जिस प्रकार आग से आग की गर्मी को अलग नहीं किया जा सकता है ठीक उसी प्रकार किसी भी रचना को किसी से अलग नहीं किया जा सकता है । इस शाश्वत् एकता को मानसिक, बौद्धिक तर्क-वितर्क के द्वारा नहीं समझा जा सकता है बल्कि क्रियायोग के गहन अभ्यास के द्वारा अनुभव किया जा सकता है । ✪

अष्टाँग योग - योग के आठ पर्याय

क्रियायोग के अभ्यास से साधक के अंदर 'योग' अपने आठ अंगों के साथ प्रकट होता है जिसे अष्टाँग योग कहा गया है । अष्टाँग योग का प्रायः गलत अर्थ लगाया जाता है । साधना के अभाव में कल्पना के द्वारा अष्टाँग योग को योग की आठ सीढ़ियों के रूप में समझा जाता है । यह मान्यता है कि पहले यम, नियम का अभ्यास करिए फिर आसन सिद्ध करिए । यह स्थिति होने के बाद ही प्राणायाम का अभ्यास किया जा सकता है । प्राणायाम के बहुत दिनों के अभ्यास के बाद प्रत्याहार, धारणा व ध्यान को साधिए तत्पश्चात् समाधि की प्राप्ति होती है । अष्टाँग योग के प्रति यह धारणा कपोल कल्पित है । प्रयोग करने पर यह पूरी तरह गलत सिद्ध होती है । अष्टाँग योग में वर्णित यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि आदि आठ अवस्थाएँ योग स्थिति को समझने के आठ तरीके हैं । जिस प्रकार पानी को जल, वॉटर, डाईहाइड्रोजन मोनोऑक्साइड आदि के रूप में व्यक्त किया जाता है ठीक उसी प्रकार योग अवस्था को यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि के रूप में वर्णित किया गया है ।

योग का अभ्यास नहीं किया जा सकता है । इसको समझने के लिए डॉक्टर व इंजीनियर की स्थिति को समझें । कोई भी यदि कहता है कि हम

डॉक्टर या इंजीनियर पढ़ रहे हैं तो इस प्रकार बोलने को अशिक्षा कहा जाता है । हम कुछ सीख रहे हैं जिसको सीखने के बाद हम डॉक्टर या इंजीनियर बन जाएँगे, इस प्रकार की अभिव्यक्ति शिक्षित होने का प्रमाण है । ठीक इसी प्रकार योग का अभ्यास कर रहे हैं, यह कहना अनुचित है । हम जो कुछ अभ्यास कर रहे हैं इससे योग अवस्था की प्राप्ति होगी, यह कहना उपयुक्त है ।

योग की अवस्था को विभिन्न तरीकों से प्राप्त किया जा सकता है । धर्मग्रन्थों का कथन है कि प्राकृतिक रूप में योग अवस्था को प्राप्त करने में लगभग 10 लाख वर्ष व्याधिरहित जीवन अनिवार्य है । क्रियायोग के अभ्यास से साधक अपनी भक्ति के अनुरूप एक ही जीवन काल के कुछ वर्षों में योग अवस्था की प्राप्ति कर लेता है । जिस प्रकार योग का अभ्यास नहीं किया जा सकता है ठीक उसी प्रकार अष्टाँग योग का भी अभ्यास नहीं किया जा सकता है । योग तथा अष्टाँग का स्वरूप एक है ।

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावावङ्गानि॥

--- पतंञ्जलियोगदर्शनम् - साधनपाद - 2:29

योग का अभ्यास नहीं किया जा सकता है ।
क्रियायोग के अभ्यास से साधक के अंदर योग अपने
आठ अंगों (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार,
धारणा, ध्यान, समाधि) के साथ प्रकट होता है ।

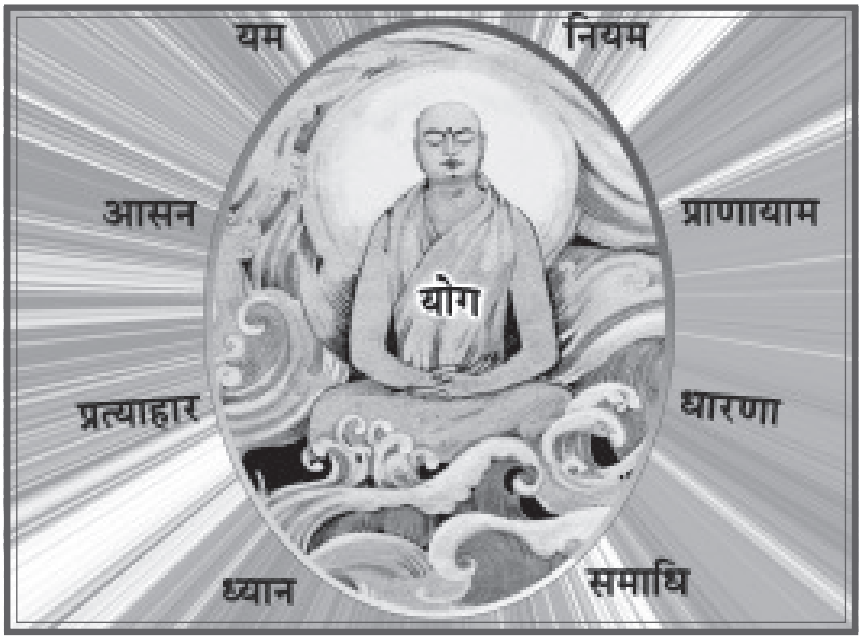

अष्टाँग योग का अभिप्राय है योग के आठ अंग । योग का अभिप्राय है ज्ञान की वह स्थिति जिसमें दूरी की शून्यता अनुभव होती है । दूरी की शून्यता ही अद्वैत की स्थिति है । इससे स्पष्ट है कि योग की अवस्था को अद्वैत की अवस्था कहते हैं । इस अवस्था को आठ तरह से समझा जा सकता है जिसे अष्टाँग योग कहते हैं ।

1- यम

यम योग की अवस्था है । यम को पाँच तरीके से समझ सकते हैं । वे पाँच तरीके हैं- सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह व अस्तेय ।

सत्य- सत्य की अनुभूति ही यम की अवस्था है । सत्य अनुभव होने पर मनुष्य पूर्ण स्वतंत्रता की अनुभूति करता है । स्वतंत्रता की अवस्था को ही सर्वव्यापकता की स्थिति कहते हैं । आध्यात्मिक क्षेत्र में इसे ही राजा का स्वरूप कहा गया है । इसलिए यम की अवस्था वास्तविक राजा के स्वरूप की अवस्था है । इस अवस्था को प्राप्त करने को यमराज की स्थिति कहते हैं। इस स्थिति में जीवन व मृत्यु मनुष्य के अधीन होता है । इसे समझ लेने पर शास्त्रों में वर्णित यमराज के पीछे वास्तविक भाव स्पष्ट हो जाता है।

अहिंसा- अहिंसा का अभिप्राय है हिंसा का अभाव अर्थात् आधि-व्याधि, बीमारी, चिन्ता व मृत्यु का अभाव । मृत्यु का अभाव ही सत्य की उपस्थिति है । अतः सत्य व अहिंसा एक ही अवस्था को व्यक्त करते हैं ।

ब्रह्मचर्य- ब्रह्म के नियमों का आचरण ही ब्रह्मचर्य है । ब्रह्मा का अस्तित्व अमर है । अमरता भाव की स्थायी अनुभूति ही ब्रह्मचर्य की अवस्था है । अमर अस्तित्व को ही अहिंसा की स्थिति कहते हैं । अतः

अहिंसा व ब्रह्मचर्य एक ही भाव को स्पष्ट करते हैं । अब यह स्पष्ट है कि सत्य, अहिंसा व ब्रह्मचर्य एक ही भाव को व्यक्त करते हैं ।

अपरिग्रह- संग्रह प्रवृत्ति का अभाव ही अपरिग्रह है । संग्रह प्रवृत्ति का अभाव तभी संभव है जब मनुष्य अपने स्वरूप को ब्रह्म के रूप में अनुभव कर ले । इस स्थिति में मनुष्य को सर्वव्यापकता की अनुभूति होती है । सर्वव्यापकता की स्थिति में संग्रह व चोरी संभव नहीं है इसलिए अपरिग्रह व अस्तेय दोनों एक ही भाव को व्यक्त करते हैं ।

अस्तेय- अस्तेय अचौर्य की अवस्था है । अचौर्य का अभिप्राय है चोरी का अभाव । अस्तेय स्थिति तभी संभव है जब मनुष्य के पास सब चीजें हर समय उपलब्ध हों । योग की अवस्था में मनुष्य अपने सर्वव्यापी अस्तित्व की अनुभूति में होता है । इस स्थिति में चोरी व संग्रह संभव नहीं है । इसलिए योग, अपरिग्रह व अस्तेय तीनों एक ही भाव को व्यक्त करते हैं । अब यह पूरी तरह स्पष्ट है कि सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह व अस्तेय पाँचों एक ही भाव को व्यक्त करते हैं और वही यम है, वही अद्वैत है और वही योग है ।

2- नियम

नियम- शौंचसंतोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः॥

- पतंञ्जलयोगदर्शनम् - साधनपाद - 2:32

शौंच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधानानि यह पाँच एक भाव को व्यक्त करते हैं जिसे नियम कहते हैं । सुख व दुःख की स्थिति को एक परमतत्व का स्वरूप समझना ही समत्व का बोध होना है और यही तप की अवस्था है । मनुष्य जब द्वैत में स्थित होता है वह सुख तथा दुःख दो स्थितियों का बोध करता है । इसके विपरीत क्रियायोग साधना में जब मनुष्य अद्वैत भाव का अनुभव करता है तब सुख व दुःख परमानन्द तत्व के रूप में अनुभव होता है । अद्वैत भाव ही योग की अवस्था है, इसलिए तप योग की अवस्था है । इस स्थिति में मनुष्य पूर्ण संतुष्ट रहता है जिसे संतोष कहते हैं ।

शौंच, संतोष, तप, स्वाध्याय ईश्वरप्रणिधानानि- शौंच अवस्था पूर्ण पवित्र स्थिति है । तप की स्थिति में ही मनुष्य पूर्ण पवित्रता की अनुभूति करता है इसलिए तप और शौंच दोनों एक ही भाव को व्यक्त करते हैं । ऐसी स्थिति में अपने विषय में मनुष्य को पूर्ण ज्ञान होता है । अपने विषय में ज्ञान को ही स्वाध्याय की अवस्था कहते है । अपने विषय में ज्ञान होने

से ब्रह्म का ज्ञान होता है इसलिए ब्रह्म की अनुभूति व आत्मअनुभूति एक ही भाव को व्यक्त करते हैं । अब यह स्पष्ट है कि तप, स्वाध्याय, ब्रह्मनिधानानि एक ही भाव को व्यक्त करते हैं और इसी को नियम कहते हैं। नियम स्थिति में अपने व ब्रह्म के बीच दूरी की शून्यता का बोध होता है । इसे ही योग की अवस्था कहते हैं । अब स्पष्ट है कि यम व नियम योग (अद्वैत) की अवस्था को ही व्यक्त करते हैं । प्राचीन भारत में उपरोक्त वर्णित नियम में स्थित होने के लिए ही सम्पूर्ण शिक्षा दी जाती थी ।

3- आसन

स्थिर सुखम इति आसनम् । सुख की स्थिर अवस्था को आसन कहा गया है। सुख की स्थिर अवस्था को ही समत्व भी कहते हैं । समत्व की अवस्था ही अद्वैत (योग) है । इस तरह स्पष्ट है कि यम, नियम व आसन तीनों जिस भाव को व्यक्त करते हैं, उसे योग कहते हैं ।

4- प्राणायाम

प्राण के आयाम का सम्पूर्ण ज्ञान ही प्राणायाम है । यहाँ आयाम का अभिप्राय है प्राण की रचना व गुणधर्म । प्राण का स्वरूप क्या है और इसका गुण क्या है? आदि का ज्ञान ही प्राणायाम का ज्ञान है । प्राण को ही जीवन कहते हैं और जीवन ही ब्रह्म का रूप है । ब्रह्म के स्वरूप में स्थित

होना ही ब्रह्मचर्य है । प्राणायाम का ज्ञान ही ब्रह्मचर्य का ज्ञान है । स्पष्ट है कि प्राणायाम व ब्रह्मचर्य दोनों एक ही भाव को प्रकट करते हैं ।

5- प्रत्याहार

आदि और अंत के बीच की दूरी की शून्यता की अवस्था को प्रत्याहार कहते हैं । इस तरह प्रत्याहार योग की अवस्था को व्यक्त करता है । ऐसी स्थिति में इन्द्रियों और मन पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त होता है । प्रत्याहार की स्थिति में मनुष्य इन्द्रियों, मन व बुद्धि को इच्छानुसार निष्क्रिय व क्रियाशील करने की सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है ।

6- धारणा

किसी भी वस्तु के प्रति सद्भाव (सच्ची भावना) को धारणा कहते हैं। जैसे- ब्रह्माण्ड की प्रत्येक रचनाएँ परब्रह्म का रूप हैं । यहाँ पर प्रत्येक रचना के पीछे सच्ची भावना यह है कि वह वस्तु परब्रह्म का व्यक्त रूप है। परब्रह्म ही सत्य है और उनका स्वरूप अमर है । अब स्पष्ट है कि सत्य अहिंसा तत्व में एकाग्रता की अवस्था ही धारणा की स्थिति है । ऐसी स्थिति में मनुष्य का स्वरूप सत्य व अहिंसा का स्वरूप हो जाता है जिसे योग की अवस्था कहते हैं ।

7- ध्यान

किसी वस्तु में एकाग्रता की तीव्रता व विस्तार इस तरह से हो कि उस वस्तु का स्वरूप अनन्त है, का बोध होना ध्यान है । इसी अवस्था को निर्विकल्प समाधि कहते हैं । यही योग की अवस्था है ।

8- समाधि

सत्य में पूरी तरह स्थापित हो जाना ही समाधि है । यही ईश्वर से एकाकार की अवस्था है । इसी अवस्था को निर्विकल्प समाधि की अवस्था कहते हैं । ✪

उपरोक्त संक्षिप्त व्याख्या को ध्यान से समझने पर
यह स्पष्ट हो जाता है कि यम, नियम, आसन, प्राणायाम,
प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि एक ही भाव को
प्रकट करते हैं जिसे योग या अद्वैत कहते हैं ।

क्रियायोग शरीर व मन के बीच दूरी शून्य करने का विज्ञान

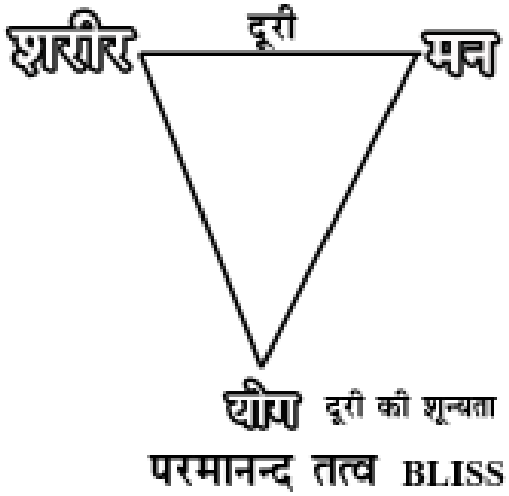

क्रियायोग, शरीर व मन के बीच दूरी शून्य करने का विज्ञान है । शरीर व मन के बीच दूरी शून्य होने पर शरीर व मन दोनों दो अलग-अलग तत्वों के रूप में नहीं अनुभव होते हैं बल्कि दोनों एक तत्व हैं, का अनुभवजन्य ज्ञान प्राप्त होता है । उसी एक तत्व को सत्, नित्य, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, परमतत्व, परब्रह्म, परमात्म तत्व आदि अनेक रूपों में वर्णित किया गया है । शरीर व मन के बीच दूरी की शून्यता का प्रकट होना योग की अवस्था है । योग अवस्था को अद्वैत अवस्था जिसे असत् , माया, अविद्या, अज्ञान कहा गया है, का लोप हो जाता है

और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एक ही परमचैतन्य परमात्मा का प्रकाश है, का अनुभव हो जाता है । ऐसी अवस्था में साधक को शाश्वत् सुख जिसे परमानन्द (नित्य नवीन आनन्द) कहा गया है, की प्राप्ति होती है ।

शरीर व मन के बीच दूरी की शून्यता के प्रकट होने पर माया का लोप हो जाता है । माया को अविद्या, अज्ञान कहा गया है । माया के प्रभाव से असत्, सत्य के रूप में, अज्ञान, ज्ञान के रूप में व अविद्या, विद्या के रूप में अनुभव होता है । माया के प्रभाव से जो अविभाजित है वह विभाजित दिखायी पड़ता है । शरीर व मन के बीच दूरी शून्य होने का अर्थ है माया का शून्य होना व सत्य का प्रकट होना ।

क्रियायोग साधना के द्वारा शरीर व मन के बीच दूरी की शून्यता स्थापित होने पर यह स्पष्ट हो जाता है आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, पेड़-पौधे, जीव-जन्तु, मानव, देवी-देवता आदि समस्त रचनाएँ अलग-अलग नही हैं बल्कि एक ही तत्व का अनेक रूपों में प्रकटीकरण है । जिस प्रकार समुद्र अनेक लहरों के रूप में प्रकट होता है, लहर का स्वरूप चाहे छोटा हो या बड़ा, भारी हो या हल्का वह समुद्र का ही व्यक्त रूप है ठीक उसी प्रकार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड अर्थात् दृश्य व अदृश्य जगत सर्वव्यापी परब्रह्म का व्यक्त रूप है । ✪

क्रियायोग की शाब्दिक एवं तात्विक विवेचना ...

''क्रियायोग'' शब्द क्रिया और योग के संयोग से बना है । क्रिया का अभिप्राय सम्पूर्ण क्रियाओं से है जो स्वरूप तथा ब्रह्माण्ड में घटित हो रही हैं तथा योग का अभिप्राय दूरी की शून्यता से है । क्रियायोग सम्पूर्ण क्रियाओं से दूरी की शून्यता स्थापित करने का विज्ञान है ।

क्रियायोग के अभ्यास में साधक सर्वप्रथम निकटतम क्षेत्र अर्थात् पैर की अँगुली से सिर तक मानव के दृश्य रूप में प्रकट होने वाली क्रियाओं से जुड़ने का अभ्यास करता है । यहाँ पर स्वरूप में प्रकट होने वाली क्रियाओं का अभिप्राय शरीर में प्रकट होने वाले विभिन्न परिवर्तनों से है जिसे हम कड़ापन-ढ़ीलापन, दर्द-आराम, हल्कापन-भारीपन, सुस्ती, थकावट आदि अनेक रूपों में अनुभव करते हैं ।

क्रियायोग के अभ्यास में साधक पैर की अँगुली से सिर तक स्वरूप में प्रकट होने वाली विभिन्न क्रियाओं से जैसे-जैसे जुड़ने का अभ्यास करता है, वैसे-वैसे वह ब्रह्माण्ड में होने वाली क्रियाओं से जुड़ने लगता है । स्वरूप

में प्रकट होने वाली क्रियाओं से दूरी की शून्यता स्थापित होने पर मनुष्य ब्रह्माण्ड में होने वाली प्रत्येक क्रिया से शाश्वत् रूप में जुड़ा है, इस सत्य का अनुभवजन्य ज्ञान प्राप्त कर लेता है । इसी समय यह भी स्पष्ट हो जाता है कि हम और ब्रह्माण्ड दो नहीं हैं । दो का अस्तित्व नहीं है । अस्तित्व केवल एक है । एक की अनुभूति अद्वैत की अनुभूति है तथा अद्वैत अनुभूति को सत्य की अनुभूति कहा गया है । मनुष्य जब तक दो का अनुभव करता है अर्थात् जब तक उसे यह अनुभव होता है कि हम तथा सूर्य, चाँद, पृथ्वी, पेड़-पौधे, जीव-जन्तु आदि समस्त रचनाएँ अलग-अलग हैं, तब तक वह असत्य की अनुभूति में है । असत्य अनुभूति को ही माया की अनुभूति कहा गया है जो सम्पूर्ण कष्टों का कारण है । माया को ही अविद्या कहते हैं ।

क्रियायोग अभ्यास के द्वारा साधक माया से ऊपर उठ जाता है । माया से ऊपर उठने पर तत्व ज्ञान की प्राप्ति होती है । तत्व केवल एक है जिसे परमतत्व, (सत् तत्व) कहा गया है । ब्रह्माण्ड की समस्त रचनाएँ- सूर्य, चाँद, पृथ्वी, तारामण्डल, ग्रह-नक्षत्र, आकाशगंगा, आसमान, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, पेड़-पौधे, जीव-जन्तु, मानव, देवी-देवता आदि एक ही परम तत्व का प्रकाश हैं । इस सत्य का अनुभव होने पर रचना, रचनाकार तथा रचना करने की क्रिया के बीच दूरी शून्य है, का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है । यह आत्मज्ञान की पूर्णावस्था है जिसके प्रकट होने पर साधक

इच्छानुसार ब्रह्माण्ड की किसी भी रचना का सृजन, सुरक्षा व परिवर्तन करने की अलौकिक शक्ति से सम्पन्न होता है । ब्रह्माण्ड का कण-कण उसकी इच्छा से चलायमान होता है । ✪

क्रियायोग गीता में वर्णित अग्निहोत्र

क्रियायोग को गीता, बाइबिल, कुरान, गुरुग्रंथ साहिब, कबीर वाणी, वेद, शास्त्र, आधुनिक विज्ञान, जीवन जीने के सामान्य सरल नियम आदि किसी के भी द्वारा समझा जा सकता है । आइए ... यहाँ क्रियायोग को श्रीमद्भगवद्गीता के द्वारा समझें- क्रियायोग गीता में वर्णित अग्निहोत्र है । अग्निहोत्र का अभिप्राय बाहर आग जलाकर उसमें घी, तेल, जड़ी-बूटियाँ आदि डालकर हवन करना नहीं है । वास्तव में शास्त्रों में जिस अग्निहोत्र की चर्चा है, वह बाहर की अग्नि नहीं बल्कि अन्तःकरण की दिव्य अग्नि है । मनुष्य के अंदर अग्नि तत्व समत्व शक्ति के रूप में है । क्रियायोग साधना के द्वारा स्वरूप में समत्व की स्थापना, अग्निहोत्र करना है जिससे मानव स्वरूप ज्ञान की दिव्य ज्वाला से पावन हो जाता है । ऐसी अवस्था में स्वरूप में अनन्त आनन्द व अलौकिक शक्ति प्रकट होती है जिसे अग्निहोत्र में स्वाहा के रूप में वर्णित किया गया है ।

''स्वाहा''

'स्व' में लीन होने पर प्राप्त अनन्त आनन्द का प्रतीक

''स्वाहा'' शब्द 'स्व' और 'आहा' के संयोग से बना है । स्वरूप को स्व तथा स्वरूप में एकाग्रता के द्वारा प्राप्त अनन्त आनन्द की अहलादकारी

अनुभूति को आहा के रूप में वर्णित किया जाता है । इस प्रकार स्वाहा स्व में लीन होने पर प्राप्त अनन्त आनन्द की अवस्था को व्यक्त करता है । क्रियायोग का ज्ञान लुप्त होने पर जब मनुष्य वास्तविक अग्निहोत्र व उससे प्राप्त शाश्वत् आनन्द को विस्मृत कर गया तो वह उसका प्रतीकात्मक अभ्यास आग जलाकर तथा उसमें घी, तेल आदि डालकर और शाब्दिक रूप में स्वाहा, स्वाहा बोलकर करने लगा । किसी भी पूजा पद्धति का प्रतीकात्मक अभ्यास गलत नहीं है परन्तु प्रतीकात्मक अभ्यास बच्चों के खेल की तरह है जिससे सत्य की अनुभूति संभव नहीं है । आज आवश्यकता है कि हम क्रियायोग साधना के द्वारा पूजाओं, साधनाओं आदि के प्रतीकात्मक स्वरूप में निहित सत्य का साक्षात्कार करें । ✪

क्रियायोग सर्वोच्च तप

क्रियायोग का अभ्यास उच्चतम तप है
जिसमें साधक स्वरूप में प्रकट होने वाले
विभिन्न परिवर्तनों को परमात्मा की शक्ति,
ब्रह्म शक्ति, सृजनात्मक शक्ति, अमरता की
अनुभूति आदि के रूप में स्वीकार करते हुए
उसमें गहन एकाग्रता प्रकट करता है ।
एकाग्रता का स्वरूप अनन्त होने पर
आत्मज्ञान और परमात्म ज्ञान दोनों की
प्राप्ति हो जाती है और मनुष्य सम्पूर्ण कष्टों
से मुक्त हो जाता है ।

क्रियायोग प्राचीन काल में वर्णित यज्ञ

क्रियायोग प्राचीनकाल में वर्णित यज्ञ है ।

यज्ञ तथा क्रियायोग की परिभाषा एक है ।

यज्ञ का सूत्र-

तपः स्वाध्याय ब्रह्मनिधानानि यज्ञः ॥

क्रियायोग का सूत्र-

तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः ॥

- पतंञ्जलयोगदर्शनम् 2:1

तप, स्वाध्याय तथा ब्रह्म में ध्यान को यज्ञ कहा गया है तथा तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधानानि का अभ्यास क्रियायोग है । वास्तव में यज्ञ तथा क्रियायोग का स्वरूप एक है । प्राचीन काल में क्रियायोग का अभ्यास यज्ञ के नाम से कराया जाता था । कालान्तर में मानव मस्तिष्क के ज्ञान का लोप होने पर यज्ञ का मौलिक स्वरूप विकृत होने लगा । लोग यज्ञ के नाम पर पशु बलि, नर बलि आदि हिंसात्मक क्रियाओं को करने लगे तथा ब्रह्म को भरम, भूत, पिशाच आदि समझने लगे । यज्ञ का स्वरूप दूषित होता देखकर तथा इसकी पवित्रता, गोपनीयता व सूक्ष्मता को बनाये रखने के लिए महर्षि पतंजलि ने यज्ञ को क्रियायोग तथा ब्रह्म को ईश्वर के

नाम से पुनः परिभाषित किया ।

तप का वास्तविक स्वरूप - तप का अभिप्राय नंगे पैर चलना, धूप में बैठना, निर्जल व्रत रहना, अन्न न ग्रहण करना, कम से कम वस्त्र पहनना, एक पैर पर खड़े रहना आदि नहीं है । तप समत्व की अवस्था है । श्रीमद्भगवद्गीता में तप को सुख व दुःख को समान करने के रूप में वर्णित किया गया है । सुख दुःख को समान करने का अभिप्राय है सुख व दुःख को सुख दुःख न समझकर ज्ञान तत्व, शक्ति तत्व, परम तत्व, परमात्म तत्व ... की उपस्थिति के रूप में अनुभव करना ।

सुख दुःख की सम्पूर्ण अनुभूतियों को ज्ञानतत्व के रूप में अनुभव करने का प्रथम प्रयोग अपने निकटतम क्षेत्र (पैर की अँगुली से सिर तक शरीर) में करना पड़ता है । शरीर में प्रकट होने वाले समस्त परिवर्तत जो दर्द-आराम, कड़ापन-ढ़ीलापन, सुख-दुःख आदि के रूप में अनुभव होते हैं, को सुख-दुःख नहीं बल्कि ज्ञान तत्व के रूप में स्वीकार करने का अभ्यास करते हैं । ज्ञान तत्व को ही सर्वशक्तिमान तत्व, परम तत्व, शक्ति तत्व आदि अनेक नामों से जानते हैं जो परब्रह्म का गुण है । पैर की अँगुली से सिर तक अस्तित्व जो निकटतम क्षेत्र है, में प्रकट होने वाले परिवर्तनों को ज्ञान के रूप में स्वीकार करते हुए उससे जुड़ने का अभ्यास करना, स्वरूप में समत्व की स्थापना है । इस अवस्था के प्रकट होने पर साधक बाहर की

सुखद व दुःखद अनुभूतियों से अप्रभावित रहता है । उसका स्वरूप विराट समुद्र की तरह होता है जिसमें सुख दुःख रूपी ज्वार भाटों के आने जाने से अंश मात्र भी प्रभाव नहीं पड़ता है । इस अवस्था को प्राप्त करना, तप सिद्ध करना है ।

स्वाध्याय - स्वाध्याय का अभिप्राय है स्वयं के बारे में ज्ञान प्राप्त करना अर्थात् अपने मौलिक स्वरूप को जान लेना । तप के सिद्ध होने पर स्वतः अपने मौलिक स्वरूप (शाश्वत् व अमर स्वरूप) का ज्ञान प्राप्त हो जाता है । इसलिए सच्चा तप वह है जिससे स्वाध्याय अर्थात् स्वरूप ज्ञान प्राप्त होता है ।

ईश्वरप्रणिधानानि- ईश्वरप्रणिधानानि का अभिप्राय है ईश्वर से एकात्म की अनुभूति अर्थात् अपने व परमात्मा के बीच दूरी की शून्यता का अनुभव कर लेना । स्वरूप में समत्व की पूर्ण स्थापना होने पर स्वरूप ज्ञान प्रकट होता है तथा स्वरूप ज्ञान की पूर्णता में स्थित होने पर परमात्म अनुभूति हो जाती है । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि तप की पूर्णता स्वाध्याय तथा स्वाध्याय की पूर्णता ईश्वरप्रणिधानानि है । तप के सिद्ध होने पर अन्य दोनों अवस्थाओं की प्राप्ति स्वतः हो जाती है । ✪

श्वाँस का व्यायाम प्राणायाम नहीं है ।

प्राणायाम श्वाँस-प्रश्वाँस के अभाव की अवस्था है जिसमें स्थित होने पर मनुष्य के अन्तःकरण में सत्य व अहिंसा की स्थिति पूर्णतया प्रकाशित हो जाती है। क्रियायोग साधना के द्वारा शरीर व मन के बीच दूरी की शून्यता स्थापित होने पर श्वाँस प्रश्वाँस की गति स्थिर हो जाती है । ऐसी अवस्था में साधक अपने सर्वव्यापी, अनन्त स्वरूप का साक्षात्कार कर लेता है ।

क्रियायोग से प्राणायाम अवस्था की प्राप्ति

प्राणायाम का वास्तविक स्वरूप -

''प्राणायाम'' शब्द प्राण तथा आयाम के संयोग से बना है । प्राण का अभिप्राय प्राण तत्व तथा आयाम का अभिप्राय गुण, स्वरूप, प्रकृति आदि से है । प्राण के सम्पूर्ण आयाम के बारे में ज्ञान प्राप्त करना, प्राणायाम है ।

प्राण को श्वाँस नहीं कहते हैं । प्राण के द्वारा श्वाँस का नियंत्रण होता है न कि श्वाँस के द्वारा प्राण नियंत्रित होता है । क्रियायोग साधना के द्वारा प्राणतत्व से जुड़े होने का जैसे-जैसे अनुभव होने लगता है वैसे-वैसे श्वाँस-प्रश्वाँस की गति कम होती जाती है तथा अन्तःकरण में अनन्त शक्ति, ज्ञान, धैर्य, साहस आदि बढ़ने लगता है । प्राण से पूर्ण एकता स्थापित होने पर श्वाँस की गति शून्य हो जाती है जिसे समाधि कहा गया है । ऐसी अवस्था में साधक बिना श्वाँस गति, नाड़ी गति, हृदय गति आदि के जीवित रहता है तथा वह परम जागरण की अवस्था- आत्मज्ञान, की प्राप्ति कर लेता है। इस अवस्था के प्रकट होने पर मनुष्य के अंदर अलौकिक शक्तियाँ प्रकाशित होने लगती हैं । वह बिना इन्द्रियों के सम्पूर्ण कर्मों को संपादित कर लेता है जिसे इन्द्रियातीत अनुभूति (इन्द्रियों के परे की अवस्था) कहा गया है ।

इन्द्रियातीत वह अवस्था है जिसमें साधक इन्द्रियों की सीमित अनुभूति से ऊपर उठकर असीमता के उस धरातल पर स्थित होता है जहाँ उसे देखने के लिए आँखों की आवश्यक्ता नहीं पड़ती है, चलने के लिए पैरों की आवश्यक्ता नहीं पड़ती है । वह बिना आँखों के देखता, बिना कानों के सुनता, बिना पैरों के चलने की अलौकिक शक्ति से विभूषित होता है । इसी अवस्था को शास्त्रों में विभिन्न सिद्धियों- अणिमा, गरिमा, लघिमा आदि के रूप में वर्णित किया गया है ।

प्रचलित तथाकथित प्राणायाम जिसमें श्वाँस को बलपूर्वक लेने, रोकने व निकालने की क्रिया का अभ्यास कराया जाता है, शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य के लिए हाँनिकारक है । श्वाँस को बलपूर्वक लेने, रोकने व निकालने पर भय, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद्, शंका, धृणा, राग द्वेष आदि मनोविकार प्रकट होते हैं ।

महर्षि पतंजलि के द्वारा आविष्कृत महानतम ग्रंथ-
पतंञ्जलयोगदर्शनम् में प्राणायाम को
इस प्रकार परिभाषित किया गया है-
तस्मिन्सति श्वाँसप्रश्वाँसयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः ॥

बाह्य वायु का भीतर प्रवेश करना श्वाँस कहा जाता है तथा

वायु का बाहर निकलना प्रश्वाँस कहा जाता है । दोनों की स्वाभाविक गति का विच्छेद अर्थात् अभाव प्राणायाम है । अतः प्राणायाम सिद्ध होने पर श्वाँस-प्रश्वाँस की गति स्वतः शून्य हो जाती है और साधक दिव्य चेतना जिसे आत्मानुभूति (अमरत्व की अनुभूति) कहा गया है, में लीन रहता है ।

श्री श्री परमहंस योगानन्द जी ने अपनी आत्मकथा- योगी कथामृत में प्राणायाम के इसी स्वरूप को परिभाषित करते हुए कहा है- Patanjali refers a second time to the life control or Kriya technique thus: "Liberation can be accomplished by that Pranayama which is attained by disjoining the course of inspiration and expiration."

''अनेक मार्गभ्रष्ट उत्साहोन्मत्त व्यक्तियों के द्वारा सिखाये जाने वाले अवैज्ञानिक श्वाँस व्यायामों से क्रियायोग का कोई संबंध नहीं है । फेफड़ों में श्वाँस को बलपूर्वक रोकने की चेष्टा अप्राकृतिक तथा निस्संदिग्ध रूप से कष्टकर भी है। इसके विपरीत आरम्भ से ही क्रियायोग के अभ्यास के बाद शांति की भावना और मेरुदण्ड में पुनरुज्जीवनी शक्ति के प्रभाव की सुखद अनुभूति प्राप्त होती है । तेज या विषम श्वाँस भय, काम या क्रोध जैसे हाँनिकारक भावावेगों की अवस्था का सहचर है । - योगी कथामृत से लिया गया संक्षिप्त अंश ।'' ✪

क्रियायोग से आसन अवस्था की प्राप्ति

आसन की स्थिति का अभिप्राय है सुख की स्थिर अवस्था । सुख की स्थिर अवस्था तभी प्राप्त होती है जब मनुष्य को अनुभव हो जाता है कि उसका अस्तित्व अमर है । अमर स्थिति की अनुभूति करना ही अहिंसा में प्रतिष्ठित होना है ।

आसन के नाम पर प्रचलित क्रियाएँ जिसमें शरीर को तोड़ने मरोड़ने व जिमनास्टिक से संबंधित क्रियाओं का अभ्यास कराया जाता है, शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य के लिए हाँनिकारक है । इन क्रियाओं को ज्यादा करने पर हृदय की बीमारी, गठिया, नसों की कमजोरी, डर आदि प्रकट होता है। तथाकथित प्रचलित आसन प्रणाली का अभ्यास किसी भी आत्मज्ञानी ऋषि-संत कबीर, नानक देव, लाहिड़ी महाशय आदि ने न तो स्वयं किया और न किसी को करने के लिए कहा ।

आसन को परिभाषित करते हुए महर्षि पतंजलि ने कहा है- ''स्थिरसुखम इति आसनम ॥'' सुख की स्थिर अवस्था आसन है । 'सुख' एक सूक्ष्म शब्द है । 'सुख' शब्द 'सु' और 'ख' दो अक्षरों के संयोग से बना है । 'सु' का अभिप्राय सुन्दर से है तथा सुन्दर का अभिप्राय किसी भी रचना को स्पष्ट रूप में देखने से है । 'ख' का

अभिप्राय आसमान अर्थात् असीमता है । आसन साधना की वह अवस्था है जिसमें स्थित होने पर स्वरूप तथा ब्रह्माण्ड की समस्त रचनाएँ अनन्त व असीम हैं, का अनुभूतिजन्य ज्ञान प्राप्त हो जाता है ।

आसन का अभ्यास नहीं किया जा सकता है । क्रियायोग की साधना से आसन अवस्था की प्राप्ति होती है जिसमें स्थित होने पर समस्त रचनाएँ आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, पेड़-पौधे, जीव-जन्तु, मानव, सम्पूर्ण दृश्य व अदृश्य जगत अनन्त सर्वव्यापी परमतत्व (परब्रह्म शक्ति) का प्रकाश है, अनुभव हो जाता है । ऐसी अवस्था में कोई भी रचना छोटी अथवा सीमित रूप में नहीं अनुभव होती है । समस्त रचनाओं का स्वरूप अनन्त व असीम तथा प्रत्येक रचना शक्ति व ज्ञान की पूर्ण इकाई के रूप में अनुभव होती है । ✪

क्रियायोग प्राण व अपान वायु का हवन (उच्चतम यज्ञ)

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणे पानं तथापरे ।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥
- श्रीमद्भगवद्गीता 4:29

श्रीमद्भगवद्गीता में क्रियायोग को प्राण व अपान के हवन के रूप में भी वर्णित किया गया है- ''**अपाने जुह्वति प्राणं प्राणे पानं तथापरे। प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥ 4:29**'' प्राण वायु का अपान वायु तथा अपान वायु का प्राण वायु में हवन के द्वारा प्राण अपान की गति अवरुद्ध हो जाती है जिससे साधक प्राणपरायण हो जाता है ।

मनुष्य के स्वरूप में प्रवाहित होने वाली विश्वव्यापी प्राणशक्ति जिससे 24 तत्व- चित्त, अहंकार, बुद्धि, मन, 10 इन्द्रियाँ, 5 तन्मात्राएँ, 5 पंचीकृत पंचतत्व क्रियाशील होते हैं, प्राण है । प्राण की वह धारा जो शरीर से बाहर निकलती रहती है, अपान है ।

क्रियायोग अभ्यास के द्वारा शरीर व मन के बीच दूरी की शून्यता स्थापित होने पर शरीर से बाहर निकलने वाली अपान वायु का शरीर में

प्रवाहित होने वाली प्राण वायु से मिलन होता है । इस प्रकार प्राण व अपान का एक दूसरे में हवन होता है । अपान का प्राण में हवन के द्वारा अपान का प्राण में रूपान्तरण हो जाता है । तत्पश्चात् साधक प्राण की अविरल धारा को शरीर से सिर रीढ़ की तरफ प्रवाहित करता है तथा रीढ़ में नीचे से ऊपर उठाते हुए आज्ञाचक्र के मूल केन्द्र कूटस्थ में विलीन कर देता है। ऐसी अवस्था में प्राण व अपान दोनों धाराओं की गति अवरुद्ध हो जाती है।

क्रियायोग साधना के द्वारा प्राण व अपान की गति के स्थिर होने पर साधक प्राण परायण हो जाता है । प्राण परायण का अभिप्राय है प्राण से पूर्ण संयुक्तावस्था । इस स्थिति में मनुष्य अपने स्वरूप को सत्य व अहिंसा के रूप में अनुभव करता है । ✪

क्रियायोग वेद पाठ है ।

-पूर्ण मंत्र है ।

क्रियायोग पूर्ण यज्ञ है ।

-सर्वोच्च यज्ञ है ।

क्रियायोग पूर्ण विज्ञान है ।

-सर्वोच्च शिक्षा है ।

क्रियायोग सत्य व अहिंसा पर चलने की क्रिया

क्रियायोग सत्य व अहिंसा पर चलने की क्रिया है । किसी भी रचना के विषय में सत्य का ज्ञान न प्राप्त होना, हिंसा है । सत्य की अनुभूति सर्वप्रथम अपने निकटतम क्षेत्र- पैर की अँगुली से सिर तक स्वरूप में होती है । क्रियायोग साधना के द्वारा साधक अपने मौलिक स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर लेता है । उसे अनुभव हो जाता है कि उसका वास्तविक स्वरूप अनन्त व सर्वव्यापी है जिसे गीता में विश्व रूप दर्शन के रूप में स्पष्ट किया गया है । पैर की अँगुली से सिर तक स्वरूप को सीमित रूप, रंग, आकार-प्रकार, वजन आदि के रूप में अनुभव करना, असत्य की अनुभूति है जिसे माया, अविद्या, अज्ञान कहा गया है ।

क्रियायोग साधना के द्वारा शरीर व मन के बीच दूरी शून्य होने पर माया का लोप हो जाता है और मनुष्य सत्य के परम प्रकाश से आलोकित हो उठता है । ऐसी अवस्था में उसे अनुभव हो जाता है कि उसका स्वरूप ही नहीं बल्कि ब्रह्माण्ड की समस्त रचनाएँ अनन्त, सर्वव्यापी, अमर व पूर्ण अस्तित्व हैं ।

किसी भी रचना का विनाश नहीं होता है । जिस प्रकार पानी को गर्म

करने पर पानी भाप के रूप में, ठण्डा करने पर बर्फ के रूप में बदल जाता है परन्तु पानी का अस्तित्व समाप्त नहीं होता है ठीक इसी प्रकार समस्त रचनाएँ सूक्ष्म से स्थूल तथा स्थूल से सूक्ष्म में रूपान्तरित होती रहती हैं । इस सत्य की अनुभूति करना अमरता की अनुभूति करना है तथा इसी को अहिंसा कहा गया है । ✪

सत्य की अनुभूति के लिए योगस्थ अवस्था की अनिवार्यता

सुने गए शब्द, देखे गए दृश्य, पढ़े गए विचार अथवा किसी भी तथ्य में निहित सत्य का साक्षात्कार करने के लिए योगस्थ अवस्था आवश्यक है। योगस्थ अवस्था का अभिप्राय योग की अवस्था से है तथा योग दूरी की शून्यता को व्यक्त करता है । अपने तथा ब्रह्माण्ड की समस्त रचनाओं, किसी भी अस्तित्व के आदि, मध्य, अंत, साधक, साधन व साध्य आदि के बीच दूरी की शून्यता की अनुभूति करना, योग में स्थित होना है । योग में स्थित होने पर यह स्पष्ट अनुभव हो जाता है कि हमारा स्वरूप तथा ब्रह्माण्ड दो तत्व नहीं हैं बल्कि सम्पूर्ण रचनाएँ एक परम तत्व (परब्रह्म तत्व) का प्रकाश हैं ।

योगस्थ अवस्था में स्थित होने पर ही ज्ञान का सही आदान-प्रदान संभव है इसलिए योगेश्वर श्रीकृष्ण अर्जुन को गीता का ज्ञान देने के पूर्व स्वयं योगस्थ होने के साथ ही साथ अर्जुन को भी योगस्थ किये थे । योगस्थ अवस्था की प्राप्ति के लिए जिस साधना का अभ्यास करना पड़ता है उसे क्रियायोग कहा गया है । ✪

स्वरूप का कोई भी अंश मृत्यु को नहीं प्राप्त होता है । इसका प्रत्येक अंश दृश्य अथवा अदृश्य रूप में सदैव विद्यमान रहता है । जिस प्रकार पानी बर्फ से वाष्प तथा वाष्प से बर्फ में बदलता रहता है परन्तु पानी कभी भी मरता नहीं है । उसका स्वरूप रूपान्तरित होता रहता है ठीक उसी प्रकार शरीर दृश्य से अदृश्य तथा अदृश्य से दृश्य तत्व में रूपान्तरित होती रहती है । स्वरूप रूपान्तरण की क्रिया इतनी सूक्ष्म होती है कि उसे मन, बुद्धि व इन्द्रियों की सीमित अनुभूति के द्वारा समझा नहीं जा सकता है । इसे अनुभव करने के लिए अतीन्द्रिय दृष्टि की आवश्यता होती है जिसे क्रियायोग की भक्तिपूर्वक साधना से सहजता में प्राप्त किया जा सकता है ।

- क्रियायोग सत्संग का संक्षिप्त अंश

सम्पूर्ण बीमारियों का मूल कारण - आदतों की गुलामी

क्रियायोग से आदतों पर विजय

समस्त बीमारियों का मूल कारण आदतों की गुलामी है । मनुष्य अनेक प्रकार की आदतों से ग्रसित है । एक निश्चित प्रकार के स्वाद, गंध को लेने की आदत, एक निश्चित रूप में देखने, बोलने, सोचने आदि से संबंधित आदतें । गहनता से देखने पर स्पष्ट होगा कि मनुष्य सम्पूर्ण क्रियाकलापों को आदतों के अधीन होकर संपादित करता है जिससे वह अपने सर्वव्यापी, अनन्त व अमर स्वरूप की अनुभूति नहीं कर पाता है । परिणामस्वरूप वह अनेक प्रकार की बीमारियों, तनाव, चिन्ता, डर आदि से ग्रसित होने लगता है । आदतों की गुलामी से मुक्त होने पर स्वतः सम्पूर्ण आधि-व्याधियों का समापन हो जाता है और साधक अपने मौलिक अनन्त व विराट स्वरूप का साक्षात्कार कर लेता है । ऐसी अवस्था में उसे जिस परम ज्ञान, शांति व शाश्वत् आनन्द की प्राप्ति होती है उसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता है ।

जिस प्रकार एक बीज में सम्पूर्ण वृक्ष सूक्ष्म रूप में विद्यमान है ठीक उसी प्रकार मानव स्वरूप तथा ब्रह्माण्ड की समस्त रचनाओं में सम्पूर्ण

ब्रह्माण्ड, ब्रह्माण्ड का आदि, मध्य, अंत अलौकिक रूप में विद्यमान है । क्रियायोग साधना के द्वारा स्वरूप में एकाग्रता केन्द्रित होने पर स्पष्ट हो जाता है कि अतीत की सम्पूर्ण घटनाएँ मानव स्वरूप में किसी न किसी रूप में घटित हो रही हैं । मनुष्य का वर्तमान स्वरूप अतीत का पुनरुत्थान और भविष्य का गर्भ है । ब्रह्माण्ड की समस्त रचनाओं में अतीत और भविष्य समाहित है । बाहर किसी अन्य रचना में एकाग्रता बढ़ाकर अतीत और भविष्य के रहस्यों को जानने में लाखों वर्ष लग जाते हैं परन्तु पैर की अँगुली से सिर तक स्वरूप में एकाग्रता बढ़ाकर अल्पकाल में सम्पूर्ण ब्रह्माण्डीय रहस्यों को आविष्कृत किया जा सकता है । इसलिए मानव स्वरूप को शास्त्रों में राजमार्ग तथा इसमें ईश्वर खोजने की क्रिया को राजयोग कहा गया है । राजमार्ग का अभिप्राय है ईश्वर को खोजने का राजसी अर्थात् बाधारहित मार्ग । क्रियायोग स्वरूप में एकाग्रता बढ़ाकर ईश्वर अनुभूति का विज्ञान है इसलिए क्रियायोग को राजयोग कहा गया है।

महाभारत सद्ग्रंथ (पंचम् वेद) के द्रोणाचार्य अपने अंदर की आदत के समरूप

महाभारत काल के द्रोणाचार्य अपने अंदर की आदत के समरूप हैं । जिस प्रकार द्रोणाचार्य कौरव व पाण्डव को शिक्षा दिये थे उसी प्रकार आदतें सुकर्म और दुष्कर्म दोनों को शक्ति देती हैं। किसी भी अच्छे व बुरे

कर्म को करने के लिए आदत का सहारा लेना पड़ता है । द्रोणाचार्य पर विजय प्राप्त करने के लिए धृष्टद्युम्न की आवश्यकता पड़ी थी ।

धृष्टद्युम्न अन्तःकरण की योगाग्नि के प्रतीक हैं । ''धृष्टद्युम्न'' शब्द में 'धृष्ट' का अभिप्राय घर्षण तथा 'द्युम्न' का अभिप्राय बल है । क्रियायोग के अभ्यास में शरीर में मन को केन्द्रित किया जाता है जिससे शरीर व मन के बीच घर्षण होता है । शरीर व मन के बीच घर्षण से प्राप्त अलौकिक शक्ति जिसे योगाग्नि कहते हैं धृष्टद्युम्न का स्वरूप है । योगाग्नि के प्रकट होने पर सम्पूर्ण आदतों पर विजय प्राप्त होती है । आदतों की गुलामी से मुक्त होते ही साधक अपने परम ज्ञानमय, पूर्ण, अमर व सर्वव्यापी स्वरूप का अनुभव कर सम्पूर्ण कष्टों से मुक्त हो जाता है । ✪

स्वरूप तथा ब्रह्माण्ड के बीच दूरी शून्य है

स्वरूप सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड से जुड़ा हुआ है । स्वरूप तथा ब्रह्माण्ड के बीच दूरी शून्य है । मनुष्य प्रतिपल ब्रह्माण्ड के प्रत्येक विन्दु पर उपस्थित है परन्तु माया के प्रभाव से वह अपनी सर्वव्यापकता की अनुभूति नहीं कर पाता है । क्रियायोग की साधना से माया का लोप होने पर सर्वव्यापकता की अनुभूति हो जाती है । इसी को सत्य अनुभूति, निर्विकल्प समाधि, आत्मज्ञान की प्राप्ति आदि अनेक रूपों में वर्णित किया गया है। स्वरूप में एकाग्रता के द्वारा ब्रह्माण्ड से एकता की अनुभूति होने पर स्पष्ट अनुभव हो जाता है कि हम सर्वव्यापी विश्वात्मा हैं । हमारे और परब्रह्म के बीच दूरी शून्य है ।

क्रियायोग के द्वारा अन्तःकरण में शास्त्रों का जन्म

उर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।

छन्दासि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥

- श्रीमद्भगवद्गीता 15:1

श्रीमद्भगवदगीता के प्रथम अध्याय के 15 वें श्लोक की सद्व्याख्या

मानव स्वरूप अश्वत्थः (उल्टा वृक्ष) है जिसमें सिर जड़ तथा रीढ़ प्रमुख तना है । सिर रीढ़ से निकलने वाली विभिन्न नाड़ियाँ अन्य शाखाओं के रूप में हैं । जिस प्रकार एक बीज में अनन्त वृक्ष छिपे है उसी प्रकार मानव शरीर रूपी वृक्ष में सूक्ष्म रूप में अनेक वृक्ष समाहित हैं । जहाँ पर ढ़ेर सारे वृक्ष होते हैं उसी को बगीचा कहते हैं । अतः मानव स्वरूप एक बगीचे की तरह भी है । शरीर रूपी बगीचे का मध्य भाग सिर व रीढ़ का स्थान है जहाँ पर सात चक्र स्थित हैं जो सात वृक्षों के समरूप हैं ।

सिर रीढ़ में स्थित सात दिव्य ज्ञानकेन्द्रों को शास्त्रों में सात स्वर्ग के रूप में भी वर्णित किया गया है । सात चक्रों का सुषुप्त रूप सात पाताल है तथा इनका जागृत रूप सात स्वर्ग है । सात पाताल और सात स्वर्ग का संयुक्त रूप ही चौदह भुवन है । क्रियायोग साधना के द्वारा सिर रीढ़ में स्थित सूक्ष्म ज्ञान के प्रकाश से संयुक्त होना 14 भुवनों की यात्रा करना है ।

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणाच्च नारदः ।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः ॥ 26 ॥

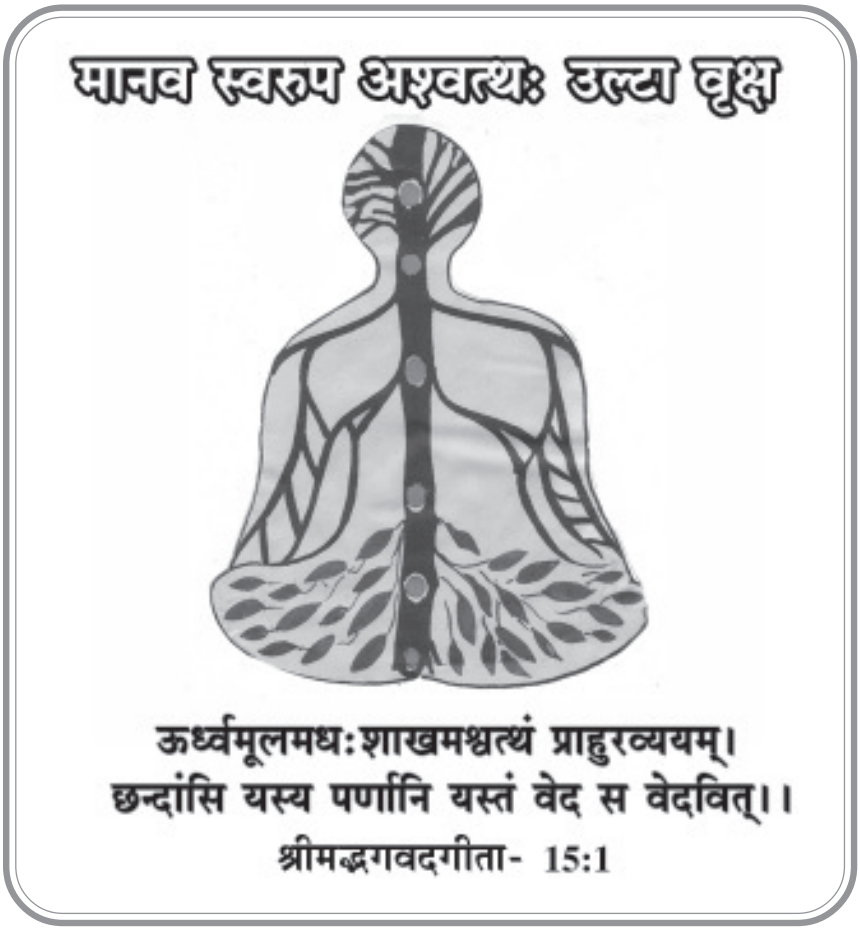

योगेश्वर श्री कृष्ण ने श्रीमद्भगवदगीता के अध्याय 10 के 26 नम्बर श्लोक में कहा है कि सारे वृक्षों में मैं अश्वत्थः हूँ । अश्वत्थः का सामान्य अर्थ पीपल के वृक्ष से लगाया जाता है, जो सही नहीं है । गीता के अध्याय

15 के प्रथम श्लोक में अश्वत्थः को परिभाषित करते हुए आगे कहा गया है कि ऐसा स्वरूप जिसकी जड़ ऊपर व शाखाएँ नीचे हैं, अश्वत्थः है ।

वृक्ष का अभिप्राय मात्र पेड़ नहीं है । किसी भी रचना का विशालतम, व्यापक अर्थात् बड़ा से बड़ा स्वरूप वृक्ष है । उदाहरणार्थ - बीज का बड़ा रूप वृक्ष है । इसी प्रकार किसी भी अण्डे का बड़ा स्वरूप जो वयस्क के रूप में प्रकट होता है, वृक्ष है । ब्रह्माण्ड की समस्त रचनाएँ जो अपने विशालतम बड़े स्वरूप में प्रकट हो गयी हैं, वृक्ष हैं ।

अश्वत्थः का स्वरूप अव्यय है । अव्यय का अभिप्राय है जो कभी भी व्यय न हो अर्थात् चुके न, समाप्त न हो । मानव स्वरूप कभी भी व्यय नहीं होता है अर्थात् यह कभी भी विनष्ट नहीं होता है । इसका अस्तित्व अमर व सार्वकालिक है ।

स्वरूप अर्थात् पैर की अँगुली से सिर तक अस्तित्व में प्रकट होने वाले विभिन्न परिवर्तन जिसे हम कड़ापन-ढ़ीलापन, दर्द-आराम, हल्कापन-भारीपन आदि के रूप में अनुभव करते हैं, अश्वत्थः वृक्ष की पत्तियाँ हैं जिन्हें वेद कहा गया है । क्रियायोग साधना के द्वारा शरीरिक परिवर्तनों में मन को केन्द्रित करने की क्रिया वेद पढ़ना है जिससे साधक सम्पूर्ण वेदों का ज्ञाता हो जाता है । ✪

''हम बाग के सभी वृक्षों के फल खा सकते है,
किन्तु बाग के बीच में स्थित वृक्ष के फल के बारे में
ईश्वर ने कहा है कि तुम उसका फल मत खाना नहीं
तो तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी ।''

- जिनीसिस 3:2-3 (बाइबिल)

"We may eat of the fruit of the trees of the garden: but of the fruit of the tree which is in the midst of the garden, God hath said, Ye shall not eat of it, neither shall ye touch it, least ye die.''

- Genesis 3:2-3 (Bible)

क्रियायोग से अन्तःकरण में बाइबिल के ज्ञान का अवतरण

बगीचे के बीच वाले वृक्ष के फल को न खायें

परमात्मा के द्वारा आदम और एव की सृष्टि तथा उनको बगीचे के बीच वाले वृक्ष के फल को न खाने का आदेश प्राप्त होना...

''हम बाग के सभी वृक्षों के फल खा सकते है, किन्तु बाग के बीच में स्थित वृक्ष के फल के बारे में ईश्वर ने कहा है कि तुम उसका फल मत खाना नहीं तो तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी ।'' - जिनीसिस 3:2-3 (बाइबिल)

मानव स्वरूप उल्टा वृक्ष है जिसे गीता में अश्वत्थः कहा गया है । एक वृक्ष में अनेक वृक्ष सूक्ष्म रूप में समाहित रहते हैं इसलिए मानव स्वरूप को बगीचा भी कहा गया है । मानव स्वरूप में सिर व रीढ़ में स्थित 7 प्रकार के ज्ञानकेन्द्र 7 वृक्षों के समरूप हैं जिन्हें योगिक भाषा में मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनहत, विशुद्धि, आज्ञा और सहस्त्रार चक्र कहा गया है । बगीचे के बीच वाला वृक्ष अनहत चक्र है जिससे स्पर्श का नियंत्रण होता है । बगीचे के बीच वाले वृक्ष के फल को खाने का अर्थ है

मानव स्वरूप एक बगीचा तथा बगीचे के मध्य में स्थित 7 वृक्ष (7 ज्ञानकेन्द्रों के समरूप)

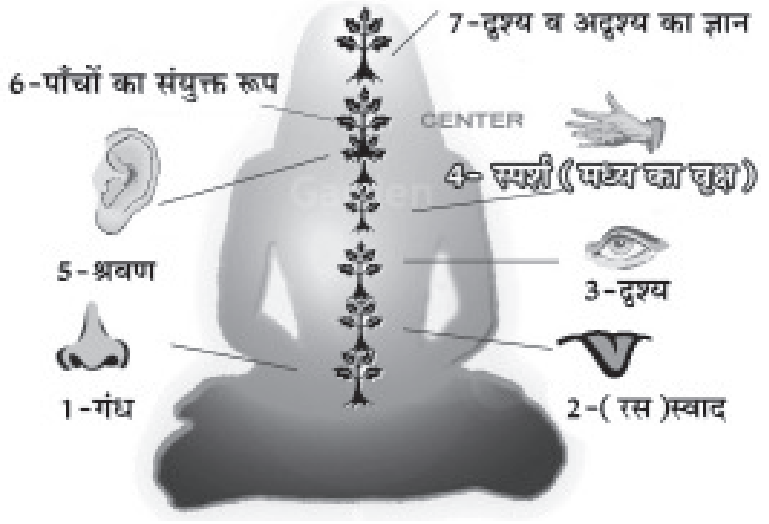

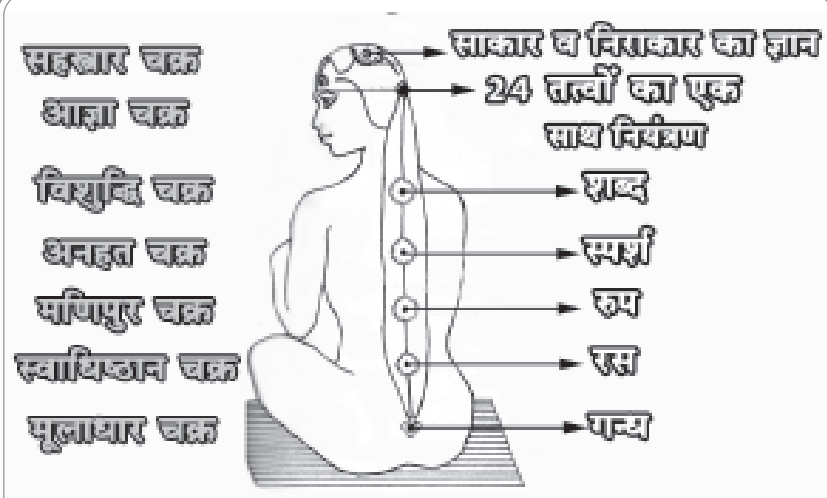

मानव स्वरूप में स्थित 7 चक्र 7 वृक्षों के समरूप

स्पर्श संबंधित अनुभूतियों में परिणाम देखना अर्थात् स्पर्श की अनुभूति को सुख या दुःख के रूप में स्वीकार करना ।

पैर की अँगुली से सिर तक स्वरूप में प्रकट होने वाले विभिन्न परिवर्तन जिन्हें हम कड़ापन-ढ़ीलापन, हल्कापन-भारीपन, दर्द-आराम आदि के रूप में अनुभव करते हैं, स्पर्श की विविध अनुभूतियाँ हैं । इन अनुभूतियों को अच्छे-बुरे, सुख-दुःख आदि के रूप में अनुभव करना स्पर्श अनुभूति में परिणाम को देखना है । यही बगीचे के बीच वाले फल को खाना है जिसके कारण जिससे कारण मनुष्य अमरता के स्थान पर मृत्यु का अनुभव करता है । मानव स्वरूप में प्रकट होने वाले विभिन्न परिवर्तनों को सुख-दुःख, बीमारी-स्वास्थ्य, अच्छा-बुरा आदि के रूप में तुलना किये बिना समस्त परिवर्तनों को परमात्मा की अनुभूति के रूप में स्वीकार करना, परब्रह्म के प्रथम आदेश का पालन करना है जो आदम और एव को दिया गया था और यही क्रियायोग साधना का प्रारम्भ है।

क्रियायोग के अभ्यास में साधक पैर की अँगुली से सिर तक स्वरूप में एकाग्रता केन्द्रित करते हुए स्वरूप के प्रति सद्भावना से जुड़ने का अभ्यास करता है । सद्भावना क्या है । एकमात्र परब्रह्म का अस्तित्व है और वही सारे रूपों में प्रकाशित हैं । अतः पैर की अँगुली से सिर तक स्वरूप परब्रह्म की उपस्थिति है । परब्रह्म को सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, अमर

आदि रूपों में वर्णित किया गया है । अतः पैर की अँगुली से सिर तक स्वरूप सर्वशक्तिमान तत्व है, पूर्ण ज्ञान तत्व है, अमर तत्व है । इसका कभी भी विनाश नहीं होता है बल्कि इसका स्वरूप दृश्य से अदृश्य और अदृश्य से दृश्य में रूपान्तरित होता है । पैर की अँगुली से सिर तक स्वरूप में प्रकट होने वाले परिवर्तनों को सुख दुःख न कहकर शक्ति तत्व, ज्ञान तत्व, शांति तत्व, अमर तत्व के रूप में स्वीकार करना उच्चतम तप है जिससे स्वरूप ज्ञान की प्राप्ति होती है । साधना की पूर्णता में पहुँचने पर साधक अनुभव कर लेता है कि उसके और परब्रह्म के बीच दूरी शून्य है।

क्रियायोग की दृष्टि में रामचरितमानस

विजय की प्राप्ति का वास्तविक अर्थ

विजय की प्राप्ति का अर्थ लड़ाई-झगड़ा करके अथवा बाहुबल के द्वारा किसी को पराजित करना नहीं है । किसी को मार-पीट कर अथवा शारीरिक, मानसिक रूप में प्रताड़ित करके उसको हरा देना, विजय नहीं बल्कि पराजय है । विजय का अर्थ है मनुष्य दूसरे की आत्मा से इतना जुड़ जाए कि लड़ाई-झगड़ा या किसी भी प्रकार के वाद-विवाद के बिना उसकी हिंसात्मक प्रवृत्ति का अहिंसात्मक प्रवृत्ति में रूपान्तरण हो जाए । ऐसी ही विजय भगवान श्री राम, योगेश्वर श्रीकृष्ण आदि सभी महान आत्माओं ने प्राप्त की थी । भगवान श्री राम ने रावण से अस्त्र-शस्त्रों के द्वारा लड़ाई नहीं किया था । उन्होंने ध्यान, तपस्या के द्वारा रावण प्रवृत्ति का राम प्रवृत्ति में रूपान्तरण कर दिया था ।

रामचरितमानस में इस बात का जिक्र स्पष्ट रूप से किया गया है कि भगवान श्री राम ने रावण पर विजय प्राप्त किया । सामान्यतया विजय प्राप्त करने का अर्थ किसी को बाहुबल से अथवा अस्त्र-शस्त्रों से पराजित करना समझा जाता है । यह विजय नहीं बल्कि पराजय है । किसी पर विजय प्राप्त करने का अर्थ है उसकी आत्मा से जुड़कर पूरी तरह से उसके साथ एकता स्थापित करके उसकी प्रवृत्ति को रूपान्तरित कर देना । भगवान श्री राम ने रावण पर विजय प्राप्त किया था । इसका अर्थ यह नहीं है कि भगवान श्री

भगवान श्री राम क्रियायोग ध्यान की मुद्रा में

क्रियायोग ध्यान से रावण प्रवृत्ति का राम प्रवृत्ति में रूपान्तरण

भगवान श्री राम विष्णु के अवतार थे । श्री राम ने सत्य व अहिंसा के मार्ग की पुनर्स्थापना किया था । वे कभी भी लड़ाई नहीं किये ।

राम नें अस्त्रों के द्वारा रावण से लड़ाई करके उसको पराजित कर दिया था। भगवान श्री राम रावण की आत्मा से इतना जुड़ गए थे कि रावण प्रवृत्ति का राम प्रवृत्ति में रूपान्तरण हो गया था । भगवान श्री राम ने कभी भी हथियारों के द्वारा लड़ाई करके रावण को पराजित नहीं किया था । इसका स्पष्ट जिक्र लंकाकाण्ड में मिलता है । लंकाकाण्ड में संत तुलसीदास जी ने लिखा है-

रावनु रथी बिरथ रघुवीरा । देख विभीषन भयउ अधीरा ॥ 1॥
अधिक प्रीति मन भा संदेहा । बंदि चरन कह सहित सनेहा ॥2॥
नाथ न रथ नहिं तन पद जाना । केहि विधि जितब बीर बलवाना ॥3॥
सुनहु सखा कह कृपानिधाना । जेहि जय होइ सो स्यंदन आना ॥4॥
सौरज धीरज तेहि रथ चाका । सत्य शील दृढ़ ध्वजा पताका ॥5॥
बल विवेक दम परहित घोरे । क्षमा कृपा समता रजु जोरे ॥6॥
ईश भजनु सारथी सुजाना । बिरति चर्म संतोष कृपाना ॥7॥
दान पर सुबुधि शक्ति प्रचंडा । बर बिग्यान कठिन को दंडा ॥8॥
अमल अचल मन त्रोन समाना । सम जम नियम सिली मुख नाना ॥9॥
कवच अभेद बिप्र गुरू पूजा । रगहि सम विजय उपाय न दूजा ॥10॥
सखा धर्ममयु अस रथ जाके । जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके ॥11॥

भगवान राम कहते हैं कि हे विभीषण ! शौर्य, धैर्य, सत्य, शील, दृढ़ता, विवेक, दम, शम, परहित, क्षमा, कृपा, समता, ईश भजन,

संतोष... आदि हमारे अस्त्र हैं । जिनके पास यह दिव्य शक्तियाँ हैं उनको बाह्य अस्त्रों की आवश्यक्ता नहीं पड़ती है । इस प्रकार भगवान श्री राम, योगेश्वर श्री कृष्ण आदि पैगम्बरों ने ध्यान, तपस्या के द्वारा रावण प्रवृत्ति का राम प्रवृत्ति में रूपान्तरण करके वास्तविक विजय प्राप्त की थी ।

'विजय' के अर्थ को विस्तारपूर्वक समझने के लिए विजय शब्द पर ध्यान दें । 'विजय' शब्द इ, व, ज, य के संयोग से बना है । 'इ' का अर्थ निकटतम से है । 'व' का अर्थ अनन्त से है । 'ज' का अर्थ उत्पन्न करने की क्रिया अर्थात् सृजनात्मक कर्म से है । 'य' का अर्थ विस्तार है । अनन्त को निकटतम में अनुभव करते हुए सृजनात्मक कर्मों का विस्तार करना, विजय प्राप्त करना है । यहाँ अनन्त का अर्थ परमात्मा से है । परमात्मा को अनन्त, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी आदि कहा गया है । परमात्मा को निकटतम में अनुभव करते हुए अर्थात् परमात्मा से एकाकार की अवस्था में मनुष्य जो कुछ कर्म करता है, वह सारे कर्म सृजनात्मक कर्म होते हैं । उन कर्मों के द्वारा अहिंसा प्रकट होती है, आपसी वाद-विवाद समाप्त होता है और सभी का कल्याण होता है । इस अवस्था की प्राप्ति के लिए क्रियायोग का अभ्यास आवश्यक है । ✪

क्रियायोग द्वारा
मृत्यु पर विजय

''मृत्यु विजित हो चुकी है ।
ओ मृत्यु, तुम्हारा देश कहाँ है ?
ओ श्मशान, तुम्हारी विजय कहाँ है ?''

(1 कोरियन्थस 54-55, बाइबिल)

मृत्यु अस्तित्व का समापन नहीं बल्कि अनन्त में विलय की दिव्य घटना

मृत्यु अस्तित्व का समापन नहीं है । मृत्यु अनन्त से मिलन की अहलादकारी अनुभूति है । मृत्यु दृश्य से अदृश्य की यात्रा है । प्रत्येक व्यक्ति को एक दिन मृत्यु का साक्षात्कार करना पड़ता है । क्रियायोग की साधना से मनुष्य जागृत अवस्था में मृत्यु में होने वाली सम्पूर्ण घटनाओं का अनुभव और उसको इच्छाशक्ति से नियंत्रित करने की सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है । यही चैतन्य मृत्यु की अवस्था है तथा इसी को निर्विकल्प समाधि कहा गया है । क्रियायोग के अभ्यास से चैतन्यावस्था में मृत्यु (निर्विकल्प समाधि) की अनुभूति होने पर मृत्युभय शून्य हो जाता है । ऐसी अवस्था में साधक इच्छाशक्ति से मरना सीख लेता है । जिसने मरना सीख लिया वही शाश्वत् जीवन की अनुभूति कर सकता है । वह अनुभूतिजन्य ज्ञान के द्वारा प्रमाणित रूप में अपने अतीत अर्थात् अनेक पिछले जन्मों तथा भविष्य को देख लेता है और अस्तित्व की अमरता का साक्षात्कार कर लेता है ।

निर्विकल्प समाधि अवस्था की अनुभूति करना जीवन की उच्चतम उपलब्धि है । इस उपलब्धि की प्राप्ति होने पर जीवन अनन्त आनन्द और अलौकिक ज्ञान से प्रकाशित हो जाता है । क्रियायोग की साधना से स्वास्थ्य की प्राप्ति, शांति, ज्ञान, शक्ति का प्रकट होना आदि लक्ष्य बिना प्रयास के

प्राप्त हो जाते हैं । क्रियायोग के अभ्यास से अंतिम उपलब्धि जिसे निर्विकल्प समाधि कहा गया है, उन्हीं को प्राप्त होती है जो भयरहित स्थिति में चैतन्य मृत्यु का साक्षात्कार करने की प्रबल इच्छाशक्ति रखते हैं । मृत्यु में सम्पूर्ण इन्द्रियों की अनुभूति जिसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध कहा गया हैं, विलुप्त होने लगती है । शरीर के सारे अंग निष्क्रय होने लगते हैं। जागृत अवस्था में इस अवस्था के प्रकट होने पर मनुष्य डरने लगता है । आत्मज्ञान की प्राप्ति में सबसे बड़ी बाधा मृत्युभय है । भय होने पर उच्च आध्यात्मिक अवस्था की प्राप्ति संभव नहीं है । क्रियायोग के नियमित अभ्यास से भय धीरे-धीरे शून्य हो जाता है और साधक अमरत्व की अनुभूति कर लेता है । आइए ! क्रियायोग की साधना से निर्विकल्प समाधि में प्रवेश करके अमरता का साक्षात्कार करें । ✪

अद्‌भुत महासमाधियाँ
Last Supper

मनुष्य के जीवन की उपलब्धियाँ उसकी समाधि व महासमाधि पर आधारित हैं । मनुष्य किस प्रकार जीवन व्यतीत किया है, उसका जीवन आत्मज्ञान की दिव्य ज्योति से प्रकाशित था या नहीं, इसका निर्णय इस सत्य से स्पष्ट हो जाता है कि वह किस प्रकार शरीर छोड़कर दृश्य से अदृश्य स्वरूप में रूपान्तरित हुआ । क्रियायोग के इतिहास में अनेक आत्मज्ञानियों ने जनसमूह के सम्मुख अमरता पर प्रवचन करते हुए चैतन्यावस्था में महासमाधि में प्रवेश किया ।

क्रियायोग एक प्रमाणिक आध्यात्मिक विज्ञान है जिसका भक्तिपूर्वक अभ्यास करने पर निश्चित रूप से मनुष्य एक ही जीवन काल में पूर्ण आत्मज्ञान की प्राप्ति कर पैगम्बर में रूपान्तरित हो जाता है । इस सत्य को प्रमाणित करने वाले अनेक ऋषि मुनि हुए हैं जिनको जीवन-मृत्यु पर पूर्ण अधिकार था । वह इच्छानुसार शरीर में प्रवाहित होने वाली विश्वव्यापी प्राणशक्ति को शरीर से बाहर निकालकर चैतन्य मृत्यु जिसे समाधि कहा गया है, का अनुभव कर लेते थे तथा इच्छानुसार शरीर में पुनः प्राणशक्ति का संचालन करके जीवन की सम्पूर्ण संवेदनाओं- हृदय गति, श्वाँस गति, नाड़ी गति आदि को क्रियाशील कर लेते थे । जीवन व मृत्यु की अनुभूतियों

में चैतन्यपूर्वक बार-बार प्रवेश करने पर मृत्युभय शून्य हो जाता है । ऐसी अवस्था में साधक अमरता का अनुभव कर लेता है और वह बाइबिल में लिखे सत्य- **''मृत्यु विजित हो चुकी है । ओ मृत्यु । तुम्हारा देश कहाँ है, ओ श्मशान तुम्हारी विजय कहाँ है '' - 1 कोरियन्थस 54:55 (बाइबिल)** को प्रमाणित कर देता है ।

मृत्यु स्वप्न है, सत्य को प्रमाणित करने वाले महान पैगम्बर प्रभु ईसा सूली पर चढ़ने के बाद तीसरे दिन पुनः प्रकट होकर शिष्यों को दर्शन दिये तथा यह प्रमाणित किये कि वे मरे नहीं हैं बल्कि परमात्मा के साम्राज्य में शाश्वत् रूप से जीवित हैं । प्रभु ईसा के परमशिष्य संत पाल क्रियायोग की साधना में अलौकिक सिद्धि प्राप्त किये थे इसलिए उन्होंने लिखा है कि मुझे ईसा में जो परमआनन्द प्राप्त होता है, मैं उस आनन्द की शपथ खाकर कहता हूँ कि मैं प्रतिदिन मरता हूँ । संत पाल प्रतिदिन निर्विकल्प समाधि में प्रवेश करके अमृत का पान करते थे, यही उनका मरने का अभिप्राय है । ✪

श्री श्री परमहंस योगानन्द जी का अद्‌भुत महासमाधि भोज (Last Supper)

अमरता का अपूर्व उदाहरण प्रस्तुत करने वाले ऋषि श्री श्री परमहंस योगानन्द जी ने 32 वर्षों तक पाश्चात्य देशों में क्रियायोग का विस्तार करने के बाद 7 मार्च 1952 को लॉस ऐन्जिलिस के बिल्टमोर होटल में एक बड़े भोज का आयोजन किया जिसमें 50 देशों के दूतावास, डिप्लोमेट्स आदि की उपस्थिति थी । सभी के सम्मुख श्री परमहंस योगानन्द जी ने भारत और ईश्वर पर एक अत्यन्त प्रेरणास्पद प्रवचन देने के बाद भारत में पुनः जन्म लेने की शाश्वत् इच्छा व्यक्त किया । श्री परमहंस योगानन्द जी के द्वारा भारत में पुनः आकर मानवता की सेवा करने की इच्छा के संबंध में, व्यक्त की गयी अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

"Mortal fires may raze all her homes
and golden paddy fields,
Yet to sleep on her ashes and dream immortality,
O India! I will be there!
Where Ganges, woods, Himalayan caves,
and men dream God -
I am hallowed; my body touched that sod."

महासमाधि के पूर्व व्यक्त की गयी अन्तिम इच्छा तथा भविष्यवाणी

'' मृत्यु की अग्नि चाहे भारत के घरों और
खेत-खलिहानों को जला कर राख कर दे,
फिर भी उसी राख पर सोने और
अमरता का स्वप्न देखने के लिए,
हे भारत ! मैं वहीं आऊँगा ...
जहाँ गंगा, जंगल और हिमालय की गुफाओं में,
मनुष्य स्वप्न देखता है ईश्वर का,
मैं उस पवित्र भूमि को स्पर्श करके धन्य हो रहा हूँ ... ''

(श्री परमहंस योगानन्द इन मेमोरियम से लिये गये
अंश का संक्षिप्त अनुवाद)

उक्त पंक्तियों को बोलने के बाद श्री परमहंस योगानन्द जी खड़े-खड़े अपनी दृष्टि को अन्तर्मुखी करके महासमाधि में प्रवेश कर गए । उन्होंने अनेक बार कहा था- '' मैं बिस्तर पर बीमार होकर नहीं बल्कि भारत और ईश्वर पर बोलते हुए परमचैतन्यावस्था में शरीर छोड़ूँगा । ''

जीवन में योगी और मृत्यु में भी योगी...

महासमाधि के 20 दिनों के बाद की अद्‌भुत निर्विकार अवस्था

श्री परमहंस योगानन्द जी की शरीर न तो बर्फ पर रखी गयी थी और न किसी दवा का लेप लगाया गया था । उनका शव 20 दिनों तक सामान्य रूमताप पर रखा गया था, परन्तु किसी भी समय शरीर से न कोई दुर्गन्ध आयी और न ही सड़न प्रकट हुई । होटों की मुस्कान जिस प्रकार 7 मार्च की रात्रि को थी उसी प्रकार मुस्कान 20 मार्च को भी थी । होटों की मुस्कान, चेहरे की दिव्य कांति तथा शरीर की निर्विकारता बनी रही । शरीर के आकार-प्रकार में भी कोई परिवर्तन नहीं आया । ✪

''मैं अपने घर जा रहा हूँ ''
(योगावतार श्री श्री लाहिड़ी महाशय)

योगिराज श्री श्री लाहिड़ी महाशय जी ने महासमाधि में प्रवेश करने के पूर्व पद्मासन में बैठकर गीता पर अत्यन्त प्रेरणास्प्रद प्रवचन दिया । उन्होंने अत्यन्त सरल भाव से अपने शिष्यों से कहा- ''मैं अपने घर जा रहा हूँ ''।

योगिराज श्री लाहिड़ी महाशय

इसका उल्लेख योगी कथामृत में इस प्रकार दिया है- श्री केशवानन्द जी ने मुझे बताया- ''लाहिड़ी महाशय के देहत्याग से थोड़े पहले की बात है । मैं हरिद्वार में अपने आश्रम में बैठा था । इतने में वे अचानक मेरे सामने प्रकट हो गये । उन्होंने मुझसे कहा- 'अविलम्ब काशी पहुँचो ।' इतना कहकर लाहिड़ी महाशय पुनः अदृश्य हो गये । ''मैंने तत्काल ही काशी के लिए प्रस्थान कर दिया । गुरूदेव के घर पहुँचकर मैंने देखा कि वहाँ बहुत से शिष्य एकत्र हैं ।

गुरूदेव उस दिन घंटों गीता की व्याख्या करते रहे । तत्पश्चात् उन्होंने सरल भाव से कहा- 'अब मैं घर जा रहा हूँ ।' ''इतना सुनते ही चारों ओर से अदम्य शोक विह्वल सिसकियाँ फूट पड़ीं । लाहिड़ी महाशय ने कहा- 'शान्त हो । मैं पुनः आऊँगा ।' इतना कहकर वे अपने आसन से उठ खड़े हुए । उन्होंने तीन बार परिक्रमा की और पद्मासन लगाकर वे उत्तराभिमुख बैठ गए तथा परिपूर्ण आध्यात्मिक गरिमा के साथ अंतिम महासमाधि में लीन हो गये ।''

श्री श्री लाहिड़ी महाशय जी के शरीर छोड़ने के पश्चात् दूसरे दिन तीन भिन्न-भिन्न नगरों में तीन भिन्न-भिन्न शिष्यों के सम्मुख वे प्रकट हुए थे । द्विशरीरी साधु स्वामी प्रणवानन्द जी ने भी अपना एक अतीन्द्रिय अनुभव मुझे सुनाया था । मेरे राँची वाले विद्यालय की अपनी यात्रा के समय स्वामी

प्रणवानन्द जी ने मुझसे कहा थाः ''लाहिड़ी महाशय के देहत्याग के थोड़े दिन पूर्व मुझे उनका एक पत्र मिला था । तथापि अपरिहार्य कारणों से मैं तत्क्षण प्रस्थान नहीं कर सका और मुझे थोड़ा विलम्ब हो गया ।

प्रातःकाल दस बजे मैं काशी के लिए प्रस्थान करने की तैयारी कर ही रहा था कि अपने कमरे में गुरुदेव की आलोकपूर्ण मूर्ति को उपस्थित देखकर अत्यन्त अह्लादित हो उठा । लाहिड़ी महाशय ने कहाः 'अब काशी जाने की क्या जल्दी है । अब तो तुम मुझे वहाँ कभी भी नहीं देख पाओगे।'' उनके शब्दों का अर्थ समझ में आते ही मैं भग्न हृदय करके क्रन्दन कर उठा । उस समय मैंने यह विश्वास कर लिया कि मैं उनका प्रत्यक्ष दर्शन नहीं बल्कि स्वप्न दर्शन कर रहा हूँ ।

गुरु जी ने सान्त्वना देते हुए मेरे निकट आकर कहाः मेरे रक्त माँस के शरीर को छूकर देखो । मैं सदा की भाँति जीवित हूँ । लाहिड़ी महाशय के पार्थिव शरीर के चिताग्नि में भस्मीभूत किये जाने के बाद दूसरे दिन ठीक 10 बजे तीन भिन्न-भिन्न नगरों में तीन भिन्न-भिन्न शिष्यों के समक्ष महान् गुरू का पुनरुज्जीवित किन्तु रूपान्तरित शरीर जीवन्त रूप में प्रकट हुआ था । ✪

ज्ञानावतार श्री युक्तेश्वर गिरी जी की अद्‌भुत महासमाधि

स्वामी श्री युक्तेश्वर जी के महासमाधि में प्रवेश करने के बाद दूसरे दिन लिया गया चित्र

योगिराज श्री श्री लाहिड़ी महाशय जी के परमशिष्य स्वामी श्री श्री युक्तेश्वर गिरी जी 9 मार्च 1936 सायं 7 बजे अपने शिष्यों के सम्मुख पद्‌मासन में बैठकर महासमाधि में प्रवेश किये । पद्‌मासन में ज्ञानावतार

स्वामी श्री युक्तेश्वर जी का निष्प्राण शरीर कल्पनातीत रूप से जीवन्त समान लग रहा था। उस समय भी उनका शरीर अत्यन्त स्वस्थ एवं कमनीय था । उनके प्रिय शरीर को बारम्बार देखने पर किसी भी तरह से यह अनुभव नहीं हो रहा था कि उसमें से प्राण चला गया है । उस समय भी उनका गात्रचर्म चिकना और कोमल था । उनके आनन पर स्वर्गीय आनन्द की शांति विराजमान थी। उन्होंने रहस्यमय आमंत्रण पर अंतिम मुहूर्त में सचेतन भाव से शरीर का परित्याग किया था ।

"Master's body, unimaginably lifelike, was sitting in the lotus posture - a picture of health and loveliness. No matter how often I looked at his dear form, I could not realize that its life had departed. His skin was smooth and soft; He had consciously relinquished his body at the hour of mystic summoning." (Paramahansa Yogananda, in Autobiography of a Yogi) ✪

''यह मेरा अंतिम उत्सव समारोह है ''
(द्विशरीर संत स्वामी प्रणवानन्द)

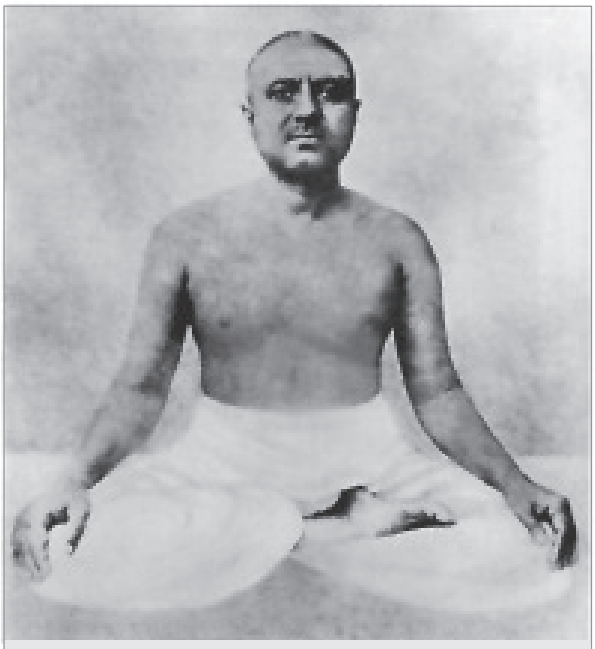

योगावतार श्री श्री लाहिड़ी महाशय के शिष्य
द्विशरीरी संत स्वामी प्रणवानन्द जी

योगिराज लाहिड़ी महाशय के शिष्य स्वामी प्रणवानन्द जी जिन्हें द्विशरीरी साधु के नाम से जाना जाता है हृषीकेश में भारी जनसमूह को भोजन कराने के पश्चात् गीता पर प्रवचन दिये और महासमाधि में प्रवेश

किये । उन्होंने कहा था कि यह मेरा अंतिम उत्सव समारोह है । इस घटना का वर्णन योगी कथामृत में दिया गया है जिसका संक्षिप्त अंश इस प्रकार है । कई महीनों बाद स्वामी प्रणवानन्द जी के अन्तरंग शिष्य सनन्दन से मेरी भेंट हुई । सनन्दन ने मुझे सिसकते हुए बताया- ''मेरे पूज्य गुरू महाप्रयाण कर गये । उन्होंने हृषीकेश के एक भारी जनसमूह को भोज देने का प्रस्ताव किया । मैंने उनसे इतने अधिक लोगों को भोजन कराने का कारण पूछा । उन्होंने बताया- 'यह मेरा अंतिम उत्सव समारोह है ।' मैं उनके शब्दों का सम्पूर्ण अर्थ नहीं समझ सका ।''

प्रणवानन्द जी ने भारी परिमाण में भोज्य सामग्री तैयार करने में हाथ बटाया । हम लोगों ने लगभग दो हजार लोगों को भोजन कराया । भोज के बाद उन्होंने एक ऊँचे मंच पर बैठकर परमात्मा पर एक अत्यन्त प्रेरणास्पद प्रवचन किया ।

प्रवचन के अन्त में हजारों लोगों के समाने उन्होंने मेरी ओर मुड़ कर कहा- 'सनन्दन, सावधान । मैं देह त्याग करने जा रहा हूँ ।'

एक क्षण तक अवाक रहने के बाद मैं जोर से चीत्कार कर उठाः 'गुरुजी कृपया ऐसा मत कीजिए । कृपा करें, कृपा करें ।' जनसमूह को मेरी बातों पर आश्चर्य हुआ और सन्नाटा छा गया । प्रणवानन्द जी मेरी ओर देखकर

मुस्करा पड़े, परन्तु इतने में अपनी दृष्टि अनन्त की ओर निबद्ध कर चुके थे। उन्होंने कहा- 'स्वार्थी मत बनो और न मेरे लिये शोक करो। मैं दीर्घकाल से प्रसन्नतापूर्वक तुम लोगों की सेवा करता रहा हूँ । अब तुम लोग आनन्द मनाओ और हँसी खुशी मुझे विदायी दो । मैं प्राणप्रिय परमात्मा से मिलने जा रहा हूँ ।'

उन्होंने पुनः जोर से कहा, सनन्दन सावधान ।
'देखो, अब मैं द्वितीय क्रियायोग के बल से देह छोड़ रहा हूँ ।'

उन्होंने सामने खड़े जनसागर की ओर एक बार देखा और सबको एक संक्षिप्त आर्शीवाद दिया । उसके पश्चात् दृष्टि को कूटस्थ में अन्तमुर्खी करके वे निश्चल हो गये। विस्मृत जनता अभी यह समझ रही थी कि वे समाधि में निमग्न हो गये हैं किन्तु तब तक वे रक्त माँस का देह पिन्जर का परित्याग कर अनन्त में विलीन हो चुके थे ।'' ✪

तीन दिन में शरीर का पुनर्निर्माण
(ईसा मसीह)

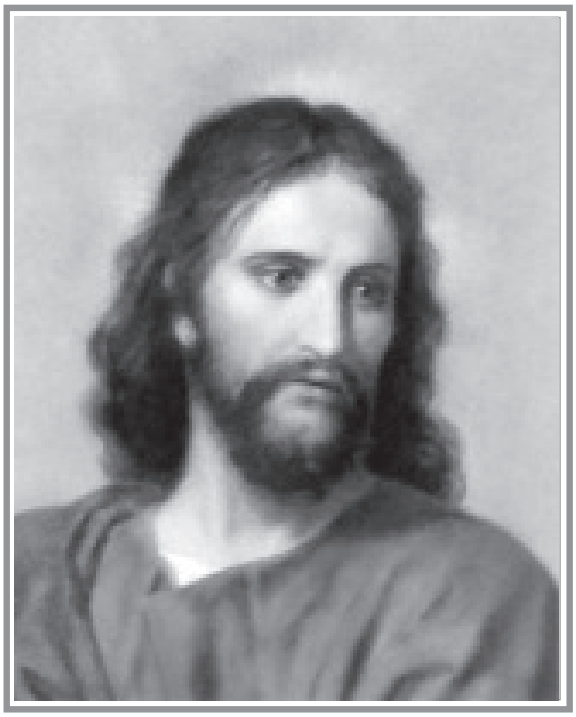

"Destroy this temple and I shall make it rise again in three days."

''तुम इस मंदिर को गिरा दो मैं
तीन दिन में इसे पुनः बना दूँगा ।''
(मैथ्यू 26:61 , बाइबिल)

प्रभु ईसा ने इज़राइल में कहा था- तुम इस मंदिर को गिरा दो मैं तीन दिन में पुनः इसे बना दूँगा । लोगों ने प्रभु ईसा की बात को बिना पूरी तरह सुने भ्रमवश यह समझ लिया कि वह ईट, पत्थर आदि से बने हुए बाहर के मंदिर को गिराने की बात कर रहे हैं तथा वह झूठा दावा रखते हैं कि इस मंदिर को गिराने पर वह मात्र तीन दिन में इसे पुनः बना देंगे ।

प्रभु ईसा बाहर के मंदिर की बात नहीं बल्कि शरीर मंदिर की बात कर रहे थे । तीन दिन का अर्थ तीन प्रकार के ज्ञान से है । दिन प्रकाश का प्रतीक है । दिन में प्रकाश होता है तथा रात्रि में अंधकार होता है । प्रकाश

तीन दिन - तीन प्रकार के ज्ञान का प्रतीक

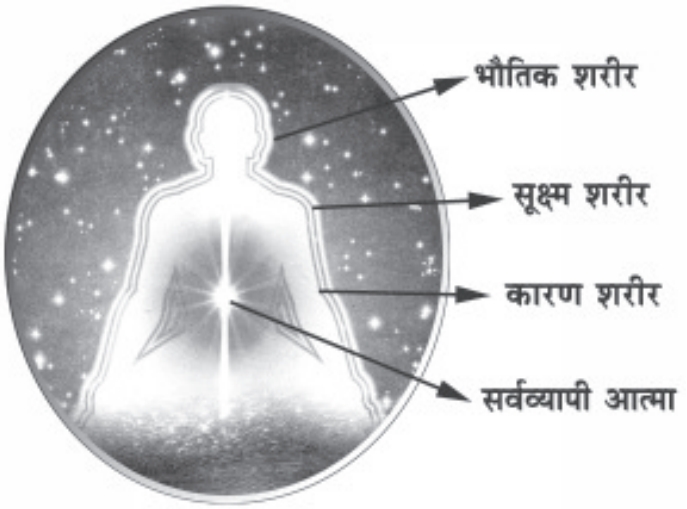

ज्ञान तथा अंधकार अज्ञान का प्रतीक है । तीन दिन का अर्थ तीन प्रकार का ज्ञान है- भौतिक जगत तथा भौतिक शरीर का ज्ञान, सूक्ष्म जगत तथा सूक्ष्म शरीर का ज्ञान, कारण जगत तथा कारण शरीर का ज्ञान । भौतिक, सूक्ष्म तथा कारण जगत का ज्ञान प्राप्त होने पर मनुष्य भौतिक शरीर का पुनर्निर्माण कर सकता है । इसके साथ ही साथ वह इच्छानुसार शरीर को किसी भी रूप-रंग, आकार-प्रकार में बदल सकता है ।

भौतिक, सूक्ष्म तथा कारण जगत का ज्ञान प्राप्त होने पर मनुष्य के अंदर सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्रकट हो जाती हैं । इन्हीं सिद्धियों को 'पतंञ्जलयोगदर्शन' में विभूति (ंिर्नूग्दह) के रूप में वर्णित किया गया है । आज भ्रमवश अगरबत्ती से निकली हुई राखी को विभूति समझा जाता है । विभूति का वास्तविक अर्थ अष्टसिद्धियाँ हैं जिन्हें 'पतंञ्जलयोगदर्शन' में अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा आदि रूपों में वर्णित किया गया है । सम्पूर्ण सिद्धियों व शक्तियों की प्राप्ति के लिए क्रियायोग का अभ्यास आवश्यक है ।

क्रियायोग की साधना सभी ऋषियों, मुनियों, पैगम्बरों, अवतारों के बताये हुए मार्ग पर चलने का विज्ञान है । क्रियायोग ईश्वर अनुभूति का विज्ञान है जिसकी साधना प्रभु ईसा, भगवान श्री राम, योगेश्वर श्रीकृष्ण, गौतम बुद्ध, महर्षि पतंजलि, नानक देव, संत कबीर, ऋषि बालमीकि, संत

तुलसीदास, भक्त मीरा आदि सभी ने किया । क्रियायोग को शास्त्रों में नाम जप, उल्टा नाम जप, यज्ञ, जप, तप, गायत्री मंत्र, अष्टांग योग, उपनयन संस्कार आदि अनेक रूपों में वर्णित किया गया है। क्रियायोग की साधना गीता, बाइबिल, कुरान, गुरुग्रन्थ साहिब, सम्पूर्ण वेदों व शास्त्रों का प्रायोगिक अभ्यास है । क्रियायोग के अभ्यास द्वारा मनुष्य अपनी भौतिक शरीर में एकाग्रता बढ़ाकर सूक्ष्म शरीर तथा कारण शरीर की अनुभूति कर लेता है । ऐसी अवस्था में वह इच्छानुसार शरीर छोड़ने व पुनः प्रकट होने की क्षमता प्राप्त कर लेता है । ✪

"The last enemy that shall be destroyed is death."

(1 Corinthians 15:26 , Bible)

अन्तिम शत्रु जिस पर विजय प्राप्त करना है, मृत्यु ।

(1 कोरियन्थस 15-26, बाइबिल)

Jesus Christ reveals Truth in the Bible:

"I and God are one."

''अहमब्रह्मास्मि''

Spiritual Interpretation of Bible in the Light of Kriyayoga

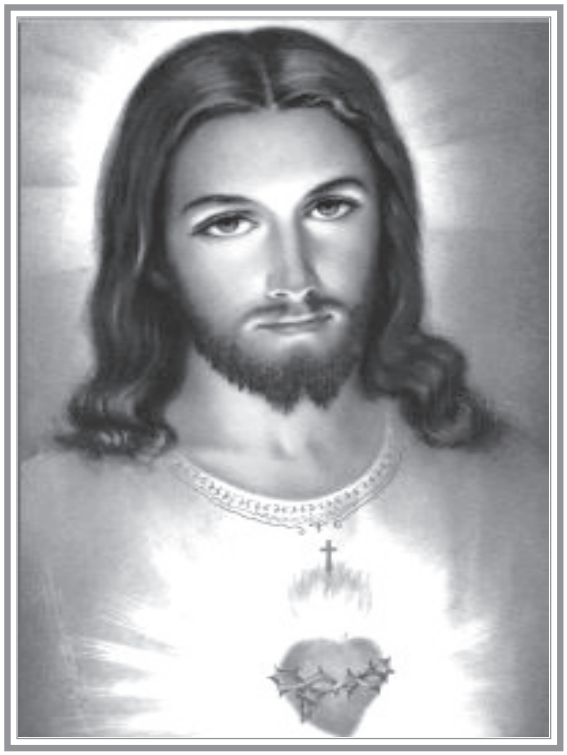

"And said, This fellow said,
I am able to destroy the temple of God
and to build it in three days."
(Matthew 26:61)

When Lord Jesus went to Israel he announced that if they destroy this temple he will rebuild it in three days. The people did not understand what he was talking about. They assumed that he was talking about the outside temples composed of bricks, stones etc. According to the understanding of the people, they thought that Jesus was saying that if you destroy this temple which is build outside, he will make it again in three days. The priest of the temple and other people were making fun about his statement. When Jesus said that they didn't understand what he really meant then the people ignored him by saying that they knew better than what he thinks.

In reality Jesus was not talking about the outside temples. He was talking about the temple of God (bodily temple). He knew that the people would destroy (crucify) his bodily temple and he would rebuild it in three days. That is why he told his disciples before going to Israel that he will be crucified there but he will rise again after death.

The phrase "three days" does not mean 24 hour day that one uses in the general terms. Three days actually means three kinds of knowledge. Day represents light and night represents darkness. Light is the symbol of knowledge and darkness symbolizes ignorance. There are three kinds of knowledge - knowledge of the physical world and

physical body, knowledge of the astral world and astral body and knowledge of the causal world and causal body.

The physical world is made from the astral world and the astral world has emerged from the causal world. In the same way our astral body has the blueprint of the physical body and our causal body has the blueprint of the astral body. When we attain the knowledge of the physical, astral and causal bodies as well as the physical, astral and causal universes, we are adorned with the divine powers and we realize our immortal nature.

After attaining the knowledge of the physical, astral and causal universes, we go beyond the three universes where we realize our oneness with the Creator - God. At this stage, we acquire the power to create, preserve and bring any kind of change according to our will in our physical, astral and causal bodies.

Imagine a chick in an egg shell which perceives that egg shell is very big like the cosmos. As each day passes the chick grows bigger and bigger. A time comes when the chick finds difficulty in moving or doing anykind of activity because he has grown bigger and he wants to come out. Then he cries and puts his entire effort to come out of the egg shell. After hearing the call of the chick, the mother

comes and breaks the shell and the chicks beholds the infinite cosmos.

In the same way the infinite cosmos is comprised of the three concentric "egg shells" - the physical, astral and causal universes. We are the chicks who are sitting in a cosmic egg and thinking that this universe is vast and infinite.

Kriyayoga practice makes us grew bigger and bigger on the spiritual plane. Growing bigger means transformation of our limited human consciousness into unlimited divine consciousness. Kriyayoga is also like the mother hen who breaks the shell of the physical, astral and causal universes and makes us free to merge with the Spirit. Lord Jesus was one with the Spirit and he attained the knowledge of the physical, astral and causal universes. That is why he said that even if you destroy the temple of God (bodily temple) he will rebuild it in three days. ✪

"The last enemy that shall be destroyed is death."

(1 Corinthians 15:26 Bible)

वर्तमान युग आरोही द्वापर का 310 वाँ वर्ष है

अब कलियुग का

अवसान हो गया है ।

वर्तमान युग आरोही द्वापर

का 310 वाँ वर्ष है ।

विष्णु नाभि के चारों तरफ सूर्य की परिक्रमा से युग का प्रादुर्भाव

युग संबंधी धारणाओं के गलत होने के कारण वर्तमान समय को लोग कलियुग मानते हैं और ऐसा समझते हैं कि आने वाला समय और अंधकारमय होगा । इस गलत सोच से मनुष्य की दृष्टि दूषित हो जाती है । परिणामस्वरूप सही गलत के रूप में और गलत सही के रूप में दिखायी पड़ने लगता है । इसलिए युग के बारे में सही जानकारी रखना सभी के लिए अत्यन्त आवश्यक है ।

युग के निर्माण की प्रक्रिया सूर्य के भिन्न-भिन्न स्थितियों के साथ शुरू होती है। चन्द्रमा पृथ्वी के चारों तरफ घूमता है और सूर्य के चारों तरफ पृथ्वी घूमती है। पृथ्वी के सूर्य के चारों तरफ घूमने से ऋतु परिवर्तन होता है और चन्द्रमा के पृथ्वी के चारों तरफ घूमने से अनेक प्रकार के परिवर्तन घटित होते हैं । ठीक इसी प्रकार जब सूर्य अपने नाभि (सृजन) केन्द्र के चारों तरफ चक्कर लगाते हुए 24000 वर्ष में एक परिक्रमा पूरा करता है तो इस दौरान मानव मस्तिष्क के विकास के विभिन्न स्तर परिलक्षित होते

हैं । मानव-विकास के इन स्तरों को चार चरणों में बाँटा गया है, जिन्हें सत्यकाल, त्रेताकाल, द्वापरकाल और कलिकाल कहा जाता है ।

सत्यकाल से कलिकाल की ओर बढ़ने पर मनुष्य के मस्तिष्क के विकास का स्तर उत्तरोत्तर घटता जाता है । सूर्य के इस परिक्रमा समय 24000 वर्ष पर अच्छी तरह दृष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि यह समय दो वृत्ताशों आरोही और अवरोही में बँटा हुआ है । इनमें से प्रत्येक 12000 वर्ष का है । अवरोही काल में सत्यकाल से त्रेताकाल, त्रेताकाल से द्वापरकाल, द्वापरकाल से कलिकाल की ओर यात्रा होती है । दूसरी तरफ आरोही क्रम में कलिकाल से द्वापरकाल, द्वापरकाल से त्रेताकाल, और त्रेताकाल से सत्यकाल की ओर यात्रा होती है । इस प्रकार 24000 वर्ष में सत्यकाल, त्रेताकाल, द्वापरकाल, और कलिकाल प्रत्येक दो बार आते हैं ।

प्रत्येक काल के दो बार आने से इन्हें युग के रूप में
(सत्युग, त्रेतायुग, द्वापरयुग, कलियुग)
वर्णित किया जाता है ।

ज्ञानावतार स्वामी श्री युक्तेश्वर गिरी जी ने अपनी पुस्तक **'होली साइन्स'** में युग निर्माण के इस तथ्य को बृहत् रूप में स्पष्ट किया है । उनके अनुसार, आरोही कलियुग का प्रारम्भ 500 ई0 के लगभग हुआ । यह अंधकारमय समय 1200 वर्ष का रहा है । इस प्रकार 1700 ई0 के आस-पास यह समाप्त हो गया और उसी वर्ष 2400 वर्ष की अवधि का आरोही द्वापरयुग प्रारम्भ हुआ । यह द्वापरयुग वैद्युत और आणविक शक्ति के विकास, टेलीग्राफ, तार व विमान और अन्य प्रकार की दूरी को समाप्त करने वाले यन्त्रों के आविष्कार और आविर्भाव का युग है । यह द्वापरयुग लगभग 4100 ई0 के आस-पास समाप्त होगा और ठीक इसी समय 3600 वर्ष की अवधि का आरोही त्रेतायुग प्रारम्भ होगा । इस युग में टेलीपैथी (ऊार्त्ज्रूष्ठ) होगी और टेलीफोन आदि की आवश्यकता कम हो जायेगी । मनुष्य अपने संदेश को मन की तरंग से भेज सकेगा । लोग एक-दूसरे के निकट आएंगे और आपसी लड़ाई-झगड़े लगभग समाप्त हो जाएंगे । लगभग 7700 ई0 में त्रेतायुग का अवसान होगा और लगभग इसी समय आरोही सत्युग का प्रारम्भ होगा । इस युग में बुद्धि का विकास बहुत तीव्र होगा । लगभग 12500 ई0 के आस-पास आरोही सत्युग का अवसान होगा और लगभग इसी समय अवरोही सत्युग का प्रारम्भ होगा।

सत्युग में मनुष्य के अन्तःकरण के चार क्षेत्र चित्त, अहंकार, बुद्धि व मन पूर्णतया प्रकाशित होते हैं । त्रेतायुग में चित्त, अहंकार व बुद्धि

प्रकाशित होते हैं तथा मन अन्धवत् कार्य करता है । द्वापरयुग में चित्त और अहंकार प्रकाशित होते हैं तथा मन व बुद्धि अन्धवत् कार्य करते हैं । कलियुग जो अज्ञानमय होता है, में केवल चित्त प्रकाशित होता है, अहंकार व बुद्धि निष्क्रिय हो जाते हैं व मन अन्धवत् कार्य करता है ।

पिछले सत्युग का अवरोही क्रम 11500 ई0 पू0 में शुरू हुआ था और 4800 वर्ष के बीतने के पश्चात् 6700 ई0 पू0 में अवरोही त्रेतायुग प्रारम्भ हुआ था । अवरोही त्रेतायुग के 3600 वर्ष बीतने के पश्चात् 3100 ई0 पू0 में अवरोही द्वापरयुग प्रारम्भ हुआ । इस अवरोही द्वापरयुग के 2400 वर्ष के बीतने के पश्चात् लगभग 700 ई0 पू0 में अवरोही कलियुग प्रारम्भ हुआ और 1200 वर्ष के व्यतीत होने के बाद लगभग 500 ई0 में अवरोही कलियुग समाप्त हुआ और फिर 500 ई0 के बाद आरोही कलियुग शुरू हुआ जो 1700 ई0 में समाप्त हो गया । 1600 ई0 से 1700 ई0 तक 100 वर्ष का समय कलियुग से द्वापरयुग का संधिकाल है । इस तरह 1700 ई0 में आरोही द्वापरयुग का शुभारम्भ हुआ ।

इस प्रकार वर्तमान समय 2007 ई0, आरोही द्वापरयुग का 310 वाँ वर्ष है । इसमें द्वापरयुग का कलियुग के साथ का 200 वर्ष का संधिकाल भी सम्मिलित है । अतः यह वर्तमान समय 2007 ई0 शुद्ध द्वापरयुग का

310 वाँ वर्ष है । इस काल में मानव मस्तिष्क की क्षमता का उत्तरोत्तर विकास एवं विस्तार होना प्रारम्भ हो गया है । इस काल में मनुष्य के अन्तःकरण का दूसरा क्षेत्र अहंकार क्षेत्र प्रकाशित हो रहा है । अहंकार क्षेत्र के प्रकाशित होने के कारण ही आज के विश्व का हर मनुष्य अपना महत्व स्थापित करना चाहता है । इसी कारण राजतंत्र में लोकतंत्र का प्रार्दुभाव हुआ है ।

द्वापरयुग के प्रारम्भ होते ही अमेरिका आजाद हुआ और विश्व के अन्य अनेक देश धीरे-धीरे गुलामी से मुक्त हुए । द्वापरयुग में बुद्धि व मन क्षेत्र अंधकारमय अवस्था में रहते हैं । बुद्धि क्षेत्र के अंधकारमय होने के कारण सही-गलत का ज्ञान होने में बहुत ज्यादा समय लग जाता है ।

इस द्वापरयुग में अहंकार के जागरण, बुद्धि की निष्क्रियता व मन के अँधेपन के कारण वर्तमान में नासमझी, आपसी झगड़ा व अनेक प्रकार की गलतियाँ दिखाई पड़ रही हैं । अहंकार तत्व के जगने के कारण मनुष्य अपने अस्तित्व की रक्षा के प्रति सजग होता जा रहा है । इसीलिए आज का हर बच्चा भी स्वास्थ्य के प्रति बड़ा जागरुक है । अहंकार तत्व के जागृत होने के कारण ही अब मनुष्य की उम्र कलियुग की अपेक्षा बहुत अधिक होगी । कलियुग में मनुष्य की अधिकतम उम्र 100 वर्ष के आस-पास थी, वहीं द्वापरयुग में 100 से 200 वर्ष के बीच होगी ।

वर्तमान द्वापरयुग में विश्व के सारे मनुष्य एक-दूसरे के निकट आ रहे हैं और विश्व में शान्ति बढ़ रही है । टेलीफोन, इण्टरनेट, फैक्स आदि आधुनिक यन्त्रों ने लोगों के बीच की दूरियों को बहुत घटा दिया है ।

कलियुग में विद्युत का ज्ञान नहीं था । 1600 ई0 में जैसे ही द्वापरयुग लगा, विलियम गिल्बर्ट ने सभी पदार्थों में विद्युत को खोज निकाला । 1609 ई0 में गैलीलियो ने टेलीफोन बनाया । 1621 ई0 में हालैण्ड के वैज्ञानिक ड्रैवेल ने सूक्ष्मदर्शी का आविष्कार किया। इस प्रकार सूक्ष्म वैज्ञानिक युग का आरम्भ हुआ । 1600 ई0 के पूर्व और पश्चात् की स्थितियों की गहन समीक्षा करने पर यह स्पष्ट हो जाता है, कि वर्तमान समय में मानव मस्तिष्क का ज्यामितीय गति से उत्तरोत्तर विकास हो रहा है।

गलत गणनाओं के आधार पर लोगों की धारणा है कि वर्तमान समय कलियुग के संधिकाल का 5101वाँ वर्ष चल रहा है, और इसी गणना के आधार पर पिछले द्वापरयुग से वर्तमान कलियुग का संधिकाल 36000 वर्ष माना जाता है । इसका अभिप्राय यह हुआ कि हम अभी संधिकाल के चौथाई समय को भी नहीं पार कर सके हैं । इस गणना के आधार पर 36000 वर्ष कलियुग बीतने के पश्चात् शुद्ध कलियुग प्रारम्भ होगा । जिसके अनुसार मानव मस्तिष्क और कमजोर होगा तथा लोगों की समझ घटेगी । जबकि मानव मस्तिष्क का ज्यामितीय गति से उत्तरोत्तर विकास-

विस्तार इस धारणा को पूरी तरह से गलत सिद्ध कर रहा है । स्पष्टतः हम विकास की ओर तेजी से बढ़ रहे हैं, समझ बढ़ते जाने के कारण सारे विवाद समाप्त होते जा रहे हैं ।

द्वापरयुग 4100 ई0 में समाप्त होगा और उसी समय आरोही त्रेतायुग प्रारम्भ होगा । त्रेतायुग में मनुष्य के अन्तःकरण के तीन क्षेत्र चित्त, अहँकार व बुद्धि प्रकाशित होंगे, अतः अधिकांश लोग वैज्ञानिक होंगे । दुनिया के सारे राष्ट्र एक-दूसरे के बहुत निकट आएँगे और आपस में ऐसा बर्ताव करेंगे जैसे एक ही परिवार के सदस्य । इस युग में टेलीफोन, इण्टरनेट के स्थान पर टेलीपैथी का प्रयोग अधिक होगा । लोगों की उम्र बहुत बढ़ जायेगी और वे मन-बुद्धि पर आसानी से नियंत्रण कर सकेंगे । साथ-साथ शासन-प्रशासन व्यवस्था भी बहुत अच्छी होगी। खाने-पीने की कोई कमी नहीं होगी । 3600 वर्ष के बीत जाने के बाद त्रेतायुग 7700 ई0 में समाप्त होगा और उसी समय आरोही सत्युग प्रारम्भ होगा और इस काल में मनुष्य के अन्तःकरण के चारों क्षेत्र चित्त, अहँकार, बुद्धि व मन प्रकाशित होंगे । बुद्धि की निष्क्रियता समाप्त हो जाएगी और मन का अँधापन दूर हो जाएगा। पृथ्वी स्वर्ग के रूप में शान्ति व ज्ञान से प्रकाशित होगी ।

सत्युग में लोगों की उम्र और अधिक बढ़ जायेगी तथा मनुष्य के अन्दर षट संपत्ति, जिसे वास्तविक धन कहा जाता है की बढ़ोत्तरी होगी । (षट

संपत्ति में शम, दम, तितिक्षा, उपरति, श्रद्धा और समाधान आते हैं । 4800 वर्ष बीत जाने के बाद 12500 ई0 के आस-पास आरोही सत्युग समाप्त होगा और इसी समय पुनः अवरोही विकास क्रम शुरू होगा। इस प्रकार 24000 वर्ष का समय 12000 वर्ष आरोही व 12000 वर्ष अवरोही युग के रूप में प्रकट होता है । ✪

काल-चक्र के अधीन सभी मनुष्य जीवन व्यतीत करते हैं । जो मनुष्य ईश्वर के साथ एकता की अनुभूति करता है वह इस काल-बन्धन से मुक्त होकर हर समय अमरता, शाश्वत् ज्ञान, अनन्त शक्ति आदि से स्वयं को युक्त अनुभव करता है ।

क्रियायोग के अभ्यास से शरीर के दृश्य से अदृश्य व अदृश्य से दृश्य में रूपान्तरित होने की सूक्ष्म घटना का ज्ञान प्राप्त हो जाता है तथा इस सूक्ष्म रूपान्तरण को इच्छानुसार प्रकट करने की विधि पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त होता है । ऐसी अवस्था में साधक जीवन व मृत्यु की सम्पूर्ण स्थितियों पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त कर लेता है । वह शाश्वत् आत्मा के रूप में स्वयं को अनुभव करता है जो जन्म व मृत्यु की स्थितियों से अप्रभावित रहता है । यही परममुक्ति की अवस्था है ।

- क्रियायोग सत्संग का संक्षिप्त अंश

परम पूज्य श्री गुरुदेव जी के द्वारा
क्रियायोग का विश्वव्यापी प्रसार

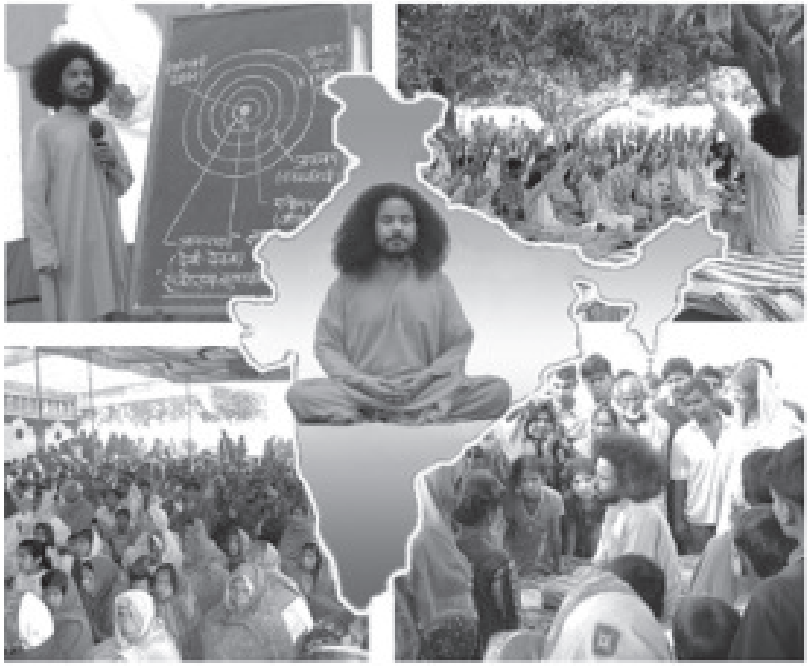

क्रियायोग - 10 मिनट का अभ्यास : 20 वर्ष का विकास ।

क्रियायोग संस्थान प्रांगण में स्थापित श्री महावतार बाबा वटवृक्ष धाम की अक्षय छाया तले क्रियायोग का प्रशिक्षण देते हुए परम पूज्य श्री गुरुदेव

क्रियायोग अनुसंधान संस्थान,
झूँसी, इलाहाबाद, भारत ।

क्रियायोग का द्वितीय केन्द्र-
योग फैलोशिप टेम्पल,
किचनर, कनॉडा ।

पावन गंगा के तट पर स्थापित क्रियायोग संस्थान के भव्य प्रांगण में स्थित महावतार बाबा वटवृक्ष तथा क्रियायोग की पंचगुरू विभूतियाँ

''ईश्वरानुभूति की वैज्ञानिक प्रणाली 'क्रियायोग' का अन्ततः सब देशों में प्रचार हो जाएगा और अनन्त करुणामय परमपिता परमात्मा के व्यक्तिगत अतीन्द्रिय अनुभव के द्वारा राष्ट्रों के बीच सौमनस्य स्थापन में क्रियायोग सहायक होगा ।''

- श्री श्री महावतार बाबा जी के द्वारा की गयी भविष्यवाणी जिसका जिक्र श्री श्री परमहंस योगानन्द जी द्वारा लिखी गयी आत्मकथा- योगी कथामृत में दिया गया है।